शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष:8 अंक:40 (मूल क्रमांक 97)
मार्च-अप्रेल 2015 मूल्य: ₹ 30.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
सहायक सम्पादक
पारुल सोनी
अम्बरीष सोनी
विनता विश्वनाथन
सम्पादकीय सहयोग
रश्मि पालीवाल
सुशील जोशी
रुस्तम सिंह
उमा सुधीर
आवरण
राकेश खत्री
प्रोडक्शन एवं डिज़ाइन
कनक शशि
कमलेश यादव
इन्दु नायर
वितरण
झनक राम साहू

शैक्षणिक
संदर्भ
शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
वर्ष:8 अंक:40 मार्च-अप्रैल 2015
(मूल क्रमांक 97)

एक प्रति का मूल्य
व्यक्तिगत : ₹ 30.00
संस्थागत : ₹ 60.00

सम्पादन एवं वितरण
एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल, म. प्र. 462 016
फोन : 0755 - 255 1109, 267 1017
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन- sandarbh@eklavya.in
वितरण- circulation@eklavya.in

सदस्यता	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
व्यक्तिगत	150 रुपए	400 रुपए	2500 रुपए
संस्थागत	300 रुपए	750 रुपए	5000 रुपए

मुखपृष्ठ - मुखपृष्ठ: इण्डियन स्कॉप्स आउल: भारत के लगभग सभी हिस्सों में उल्लू दिखाई दे जाते हैं। इसके रंग-रूप व आकार में काफी विविधता है। उल्लू की एक खासियत है कि ये अपनी गर्दन को लगभग 270 डिग्री तक घुमा सकते हैं। कैसे कर पाता है उल्लू इसे? एक सामान्य अवलोकन यह भी है कि उल्लुओं को अन्धविश्वास व मंत्र-तंत्र के साथ जोड़कर देखा जाता है। इससे उल्लू की आबादी घट रही है। *सम्बन्धित लेख पढ़िए पृष्ठ 19 पर।*

पिछला आवरण - रस्साकशी: रस्साकशी का खेल शायद आपने कभी खेला हो। एक रस्से के दोनों छोरों पर एक-एक टीम ज़ोर लगा रही होती है सामने वाली टीम को अपनी ओर खींच लाने के लिए। जब तक दोनों तरफ से बराबर बल आरोपित हो रहा होता है, टीमें अपने-अपने स्थानों पर बनी रहती हैं। अगर इस खेल में कोई तीसरी टीम भी हिस्सेदारी करे तो क्या होगा? बलों का वितरण किस प्रकार होगा और कैसे जमेगा खेल का सामंजस्य? *इससे सम्बन्धित लेख देखिए पृष्ठ 05 पर।*

Link Cover 1 : http://ibc.lynxeds.com/files/pictures/Indian_Scops_Owl_02_IMG_2063.jpg
Cover 4 : http://belakutrust.org/wp-content/uploads/2012/12/Tug-o-war-2011.jpg

इस अंक में उन सब चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है,

पिटारा कार्ट

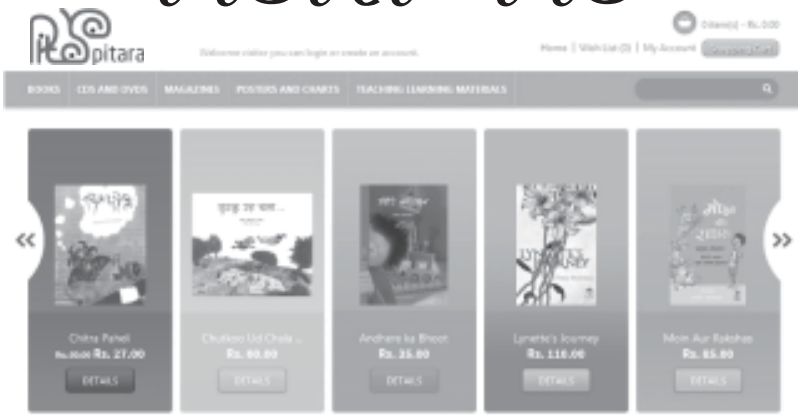

सिंगल क्लिक और आसान सर्च

एकलव्य की किताबें, पत्रिकाएँ, टी.एल.एम.,
शैक्षणिक सी.डी., चार्ट, पोस्टर एवं साइंस किट...
आपकी पहुँच में...

जल्द ही देश भर की संस्थाओं और प्रकाशकों की चुनिन्दा सामग्री भी

www.pitarakart.in पर विज़िट कीजिए।
अपना अकाउंट बनाइए।
आसान खरीदारी और सुरक्षित भुगतान

विशेष ऑफर

पिटारा कार्ट द्वारा की गई ऑनलाइन खरीदी
पर 100 रुपए की विशेष छूट।

एकलव्य
www.eklavya.in

05

सन्तुलन या असन्तुलन

हम अपने रोज़मर्रा के कार्यों में सन्तुलन का बखूबी इस्तेमाल करते हैं। रस्साकशी का खेल तो आपको याद होगा ही। विज्ञान के नज़रिए से जब तक दोनों टीमें एक समतल पर एक-दूसरे के विपरीत समान बल आरोपित कर एक-दूसरे के बलों को काटती रहेंगी, सन्तुलन की स्थिति में यथावत बनी रहेंगी।

अब अगर इस खेल में तीसरी टीम भी उतर आए तो स्थिति क्या होगी? क्या एक बिन्दु और तल पर लगने वाले एक समान मान के तीन बल एक-दूसरे के असर को काट पाएँगे? तीन टीमों का रस्साकशी में ठहरना आसान नहीं होगा। वास्तव में एक ही तल पर तीन बलों का आपस में सन्तुलित या असन्तुलित होना इस बात पर निर्भर करता है कि तीनों बलों की पारस्परिक स्थिति कैसी है। आइए पढ़ते हैं इस रोचक स्थिति के बारे में।

51

आयदा फिफर की भारत यात्रा का वृत्तान्त

किसी देश के इतिहास को समझने में विदेशी यात्रियों के सफरनामों की अहम जगह है। अलग-अलग समय में कई विदेशी यात्रियों ने भारत की यात्राएँ कीं और अपने यात्रा वृत्तान्त लिखे। लेकिन कई दफा यात्रा के उद्देश्यों की वजह से इन विवरणों से लोकजीवन नदारद रहता है।

आम तौर पर भारत की यात्रा करने वाले यात्रियों में पुरुष यात्री ज़्यादा रहे हैं। औपनिवेशिक काल में काफी महिला यात्री भी भारत आईं। इनमें से एक थीं - आयदा लौरा फिफर। उनका यात्रा विवरण इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह एक महिला के नज़रिए से देखा गया लोकजीवन है। इससे हमें हर दास्तान पर मिलती है एक महिला की नज़र और भावनाएँ जो अपने आप में बिरली और अनूठी हैं। आइए देखते हैं पौने दो सौ साल पहले का भारत कैसा था।

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-40 (मूल अंक-97), मार्च-अप्रैल 2015

इस अंक में

4 | **आपने लिखा**

5 | **सन्तुलन या असन्तुलन**
विवेक मेहता

19 | **उल्लू की नज़र**
विनता विश्वनाथन

27 | **उबासी क्यों आती है?**
निशी खण्डेलवाल

36 | **नहीं दिए जाते रचनात्मकता के अवसर**
मनोहर चमोली

41 | **पत्तियाँ पानी बाहर फेंकती हैं**
अलका तिवारी

48 | **अलग-अलग तरीकों से सवाल...**
उदय मैत्रा

51 | **आयदा फिफर की भारत यात्रा का वृतान्त**
माधव केलकर

64 | **भाषा शिक्षणः समग्र भाषा पद्धति - भाग 1**
सौरभ रॉय

77 | **मिठाईवाला**
भगवतीप्रसाद वाजपेयी

87 | **उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में बर्फ का जमावड़ा..?**
सवालीराम

आपने लिखा

शैक्षणिक संदर्भ, अंक 96 की प्रति प्राप्त हुई। प्राप्त कर गर्व की अनुभूति होती है। पहले पहल मुझे लगा की इस पत्रिका की अच्छाई क्या होगी कि शिक्षक इसे चाव से माँग कर पढ़ते हैं। उस समय तक इसे केवल देखा भर था, पढ़ा नहीं था। पढ़ने के बाद मुझे ऐसा लगता है जैसे सीप के मोती का संग्रह कर रहा हूँ। मुझे शिक्षकों को किसी विषय वस्तु या किसी किताब का रेफरेंस देना हो तो बेझिझक 'संदर्भ' का नाम लेने में कोई समय ज़ाया नहीं करता।

पिछले दिनों संकुल - कुर्रा, ब्लॉक - धमतरी, छत्तीसगढ़ में बच्चों का बाल मेला (रिंगी चिंगी) का आयोजन संकुल केन्द्र कुर्रा, शाला प्रबन्धन समिति तरसीवा और अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ मिलकर किया गया। सहभागी शिक्षकों की माँग थी कि यदि सम्भव हो तो रचनात्मक गतिविधियों पर आधारित आलेख प्रकाशित करें।

इस अंक में 'शिक्षकों की कलम से' वाले हिस्से में 'जवाब देने से भी ज़रूरी है सवाल पूछना', 'कई नाम थे उसके' और 'कक्षा में सीखना-सिखाना' – तीनों आलेख बेहद समसामयिक हैं और एक नवीन सोच की ओर ले जाते हैं।

सवालीराम के तहत अब जिस तरह के सवाल पूछे जा रहे हैं, काफी लाभकारी दिखने लगे हैं। निवेदन रहेगा की अंक लगातार भेजते रहें ताकि बातचीत का आधार बना रहे।

नरेन्द्र कुमार साहू
अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन,
धमतरी, छत्तीसगढ़

भूल सुधार

अंक 96 में प्रकाशित एमिल ज़ोला की कहानी 'बड़ा मिचू' *का अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद मनोहर नोतानी ने किया था। भूलवश उस कहानी के अन्त में अनुवादक का ज़िक्र नहीं हो पाया था।*

– सम्पादक मण्डल

सन्तुलन या असन्तुलन

विवेक मेहता

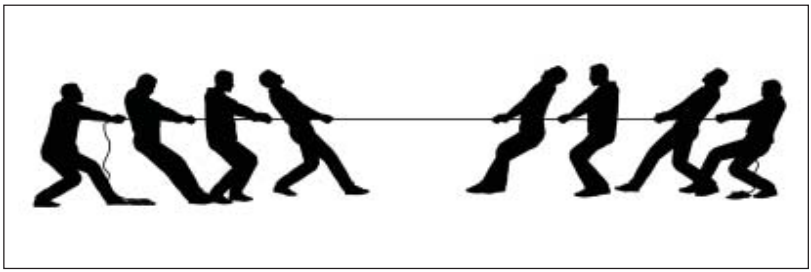

बल सम्बन्धित अध्याय में हम अक्सर बलों को किन्हीं दिशा-विशेष में विघटित करके देखते हैं - अक्सर x एवं y निर्देशांकों में। इस लेख में रस्साकशी के उदाहरण से शुरू करते हुए यह समझने की कोशिश है कि जब दो से ज़्यादा बल एकदम विपरीत दिशा में न लग रहे हों तो उनका कुल परिणाम समझने व पता करने के लिए यह एक उपयोगी विधि है। थोड़ा-बहुत गणित ज़रूर इस्तेमाल करना पड़ता है, परन्तु बहुत ही बुनियादी स्तर पर।

रस्साकशी एक बेहद ही मज़ेदार खेल है। शायद आपने कभी खेला या देखा हो। रस्सी का एक छोर पकड़े हुए एक टीम, दूसरे छोर की टीम को अपनी ओर खींचने की कोशिश करती है। ज़ाहिर-सी बात है कि जब मुकाबला हो ज़ोर-आज़माइश का, तो वही टीम जीतेगी जिस टीम के खिलाड़ी ज़्यादा ज़ोर से रस्सी को खींच पाएँगे। लेकिन अगर दोनों टीम बराबर ज़ोर लगाएँ तब क्या होगा? कुछ भी नहीं, रस्सी और दोनों टीम अपनी-अपनी जगह पर यथावत बने रहेंगे। न कोई टीम जीतेगी, न कोई टीम हारेगी। और यांत्रिकी (मेकेनिक्स) की भाषा में हम कहेंगे कि रस्सी पर लगने वाले दो

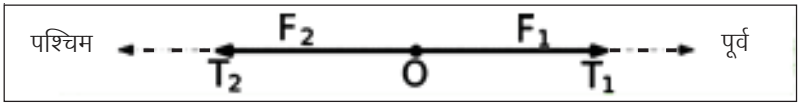

चित्र-1: विपरीत दिशाओं में लगते समान बल

बलों की यह व्यवस्था सन्तुलन में है। इस सन्तुलित व्यवस्था के साथ हम कुछ प्रयोग कर सकते हैं। लेकिन उससे पहले हम ज़रा रस्सी व उस पर लगने वाले बलों की इस विशेष-सी लगने वाली व्यवस्था को एक साधारण रूप में व्यक्त कर लेते हैं ताकि दो बलों की ऐसी किसी भी व्यवस्था को समझा जा सके।

इन दो बलों की व्यवस्था को समझने के लिए चित्र-1 में दिखाए अनुसार हम मान सकते हैं कि एक टेबल पर एक बिन्दु O है और इस बिन्दु की एक तरफ, टेबल के सपाट तल में, F_1 बल लग रहा है व पहले बल की दिशा के विपरीत F_2. रस्साकशी से तुलना करें तो F_1 एक और F_2 दूसरी टीम के द्वारा लगाया गया बल है। बिन्दु O रस्सी पर कोई भी एक बिन्दु हो सकता है। आसानी के लिए हम यह भी मान लेते हैं कि बल F_1 बिन्दु T_1 से पूर्व की ओर लग रहा है और F_2 बिन्दु T_2 से पश्चिम की ओर। अब जैसा कि हमने देखा, अगर $F_1 = F_2$ होगा तो बिन्दु O की टेबल पर स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी। अगर F_1 या F_2 में से कोई भी दूसरे की तुलना में ज़्यादा हुआ तो बिन्दु O उस बल की दिशा में खिसकता चला जाएगा। खैर, इन दो बलों का मान जो भी हो बिन्दु O हमेशा T_1 व T_2 को जोड़ने वाली रेखा पर ही रहेगा और सिर्फ उस पर ही नज़र रखकर हम यह बता सकते हैं कि तंत्र सन्तुलित है या नहीं।

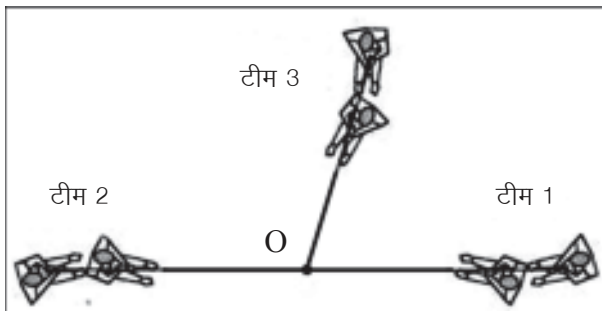

चित्र-2: तीन टीमों के बीच रस्साकशी

अब जिस प्रयोग की बात हम पहले कर रहे थे उस पर आते हैं। याद रहे कि यह प्रयोग हम तब ही कर पाएँगे जब दोनों बल बराबर हों यानी कि तंत्र सन्तुलित हो। बलों की इस सन्तुलित व्यवस्था में अब एक और बल जोड़ा जाए। रस्साकशी के खेल से तुलना करें तो ये ठीक वैसा ही होगा कि एक तीसरी टीम भी खेल के मैदान में उतर आए और चित्र-2 में दिखाए अनुसार बिन्दु O को अपनी तरफ खींचने की कोशिश करे। लेकिन कुछ शर्तें हैं जो इस नए बल पर लागू होंगीः

1. यह बल भी उसी तल (टेबल के सपाट पटिए) पर हो जिसमें पहले दोनों बल हैं। यानी कि सारे बल एक ही तल में (coplanar) हों;
2. इस बल का मान पहले दोनों बलों के बराबर हो, यानी कि $F_1 = F_2 = F_3$; और,
3. इसके लगने की दिशा पहले दोनों बलों की दिशा, यानी कि पूर्व या पश्चिम, ना हो।

अब सवाल यह उठता है कि इस नए बल को जोड़ने के बाद हमारे बलों के इस नए तंत्र का क्या होगा? बचपन में एक कहावत सुनी थी 'तीन तिगाड़ा, काम बिगाड़ा'। तो क्या इस नए बल के चलते हमारी व्यवस्था बिगड़ जाएगी, क्या यह असन्तुलित हो जाएगी? या यह नई व्यवस्था सन्तुलन में होगी? अगर सन्तुलित होगी तो ऐसा किन परिस्थितियों में होगा? रस्साकशी के खेल के सन्दर्भ में हम यह सवाल पूछ सकते हैं कि जब सभी टीम समान बल लगा रही हों तो किस स्थिति में कोई टीम जीत सकती है।

क्या आपके पास जवाब हैं इन सवालों के? चाहें तो कुछ जुगाड़ लगाकर अपने लिए एक प्रयोग भी तैयार कर सकते हैं, जिससे आप इन सवालों की पड़ताल कर सकें। और अगर जुगाड़ न लगा पाएँ तो कागज़-

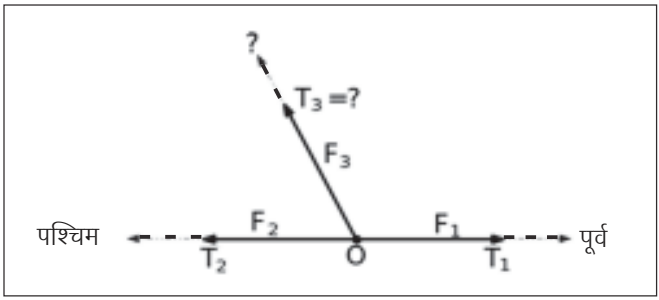

चित्र-3: असन्तुलित बल

कलम लेकर ही जुट जाइए।

सबसे पहले उन दो बातों पर गौर करें जो शायद हमारी मदद कर सकें, इन सवालों के जवाब खोजने में।

1. ये बात तो पक्की है कि बिन्दु O अब अपनी पहली वाली जगह पर नहीं रहेगा। ये हम कैसे कह सकते हैं? चित्र-1 में दिखाई गई परिस्थिति में दो बल आपस में सन्तुलन की स्थिति में हैं। एक तरीके से कह सकते हैं बिन्दु O पर लगने वाले बल F_1 व F_2 एक-दूसरे के असर को काट रहे हैं। इसीलिए बिन्दु O तटस्थ है। ऐसे में अगर एक और बल इस व्यवस्था में जोड़ा जाए तो यह नई व्यवस्था तब तक सन्तुलन में नहीं रहेगी जब तक बिन्दु O पर लगने वाले सभी बल एक-दूसरे के असर को नहीं काट देते। चित्र-3 में दिखलाई गई स्थिति में F_1 व F_2 तो एक-दूसरे के असर को काट रहे हैं, लेकिन F_3 के असर को काटने वाला कोई बल नहीं है।

हमारे इस अवलोकन से जो सवाल उभरकर आते हैं वे ये कि क्या एक बिन्दु पर लगने वाले समान मान के तीन बल एक-दूसरे के असर को काट सकते हैं? अगर हाँ, तो किस परिस्थिति में? ये सवाल ऊपर पूछे गए सवालों का एक और रूप ही है। इस पर आगे बढ़ने से पहले एक अन्य बात पर भी गौर कर लें।

2. हमने देखा कि दो बलों की सन्तुलित व्यवस्था में लाए गए इस तीसरे बल पर कुछ शर्तें लागू होती

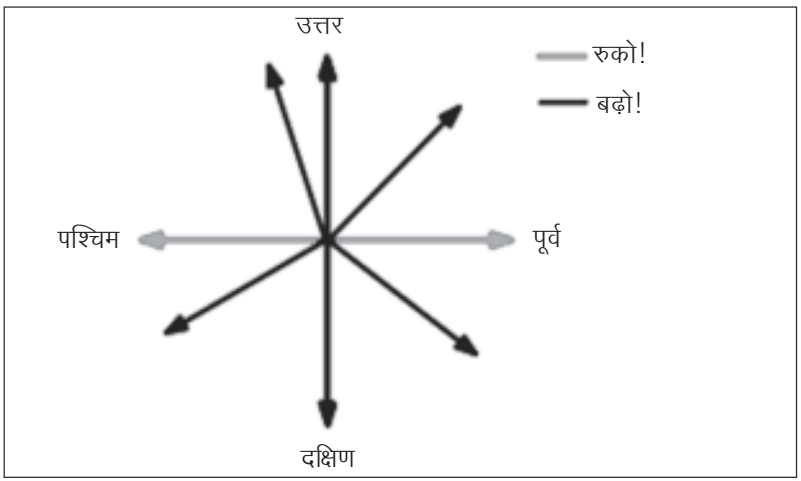

चित्र-4: तीसरे बल की सम्भावित दिशाएँ

हैं। अगर आप इन शर्तों पर गौर करें तो पाएँगे कि पहली दो तो एकदम पक्की हैं। उनमें फेर-बदल की गुंजाइश नहीं। लेकिन जो आखिरी शर्त है वह लचीली है। उसे पूरा करने के लिए बस इतना ही काफी होगा कि नया बल पहले दो बलों की दिशा में न हो। यानी कि पूर्व या पश्चिम दिशा में न लग रहा हो। अब अगर इन दिशाओं को छोड़ दें तब भी हमारे पास अनगिनत दिशाएँ हैं, जिस तरफ से नया बल लगाया जा सकता है (देखें चित्र-4)। इसके अलावा एक और राशि भी है जिसका चुनाव हमारे हाथों में है - यह बल उस दिशा में कितनी दूरी से लगाया जाए। यानी कि T_3 की स्थिति भी हम चुन सकते हैं। तो क्या, पहले बिन्दु में उठाए गए सवालों के जवाब इन दो राशियों के चुनाव से जुड़े हुए हैं?

जिन दो बातों पर हमने हाल ही में गौर किया वे हमारे सामने दो सवाल प्रस्तुत करती हैं:

1. किन परिस्थितियों में एक ही बिन्दु व एक ही तल (plane) पर लग रहे तीन समान मान के बलों की व्यवस्था सन्तुलित होगी? व
2. बल लगाने की दिशा व स्थान के चुनाव का खेल के नतीजे पर क्या असर पड़ता है?

इन दोनों पर हम बारी-बारी से चर्चा करते हैं।

कब होगा सन्तुलन?

ध्यान रहे यहाँ चर्चा बलों की ऐसी व्यवस्था पर हो रही है, जिसमें सभी बल समान तल में हैं, एक ही बिन्दु पर लग रहे हैं व उन सभी का मान भी समान है। ऐसी व्यवस्था की समझ बनाने के कई तरीके हो सकते हैं।

चित्र-5 में हमने कुछ बलों की व्यवस्थाएँ (systems of forces) दिखाई हैं। चूँकि सभी बलों के मान समान हैं, इसीलिए बलों को दर्शाती रेखाओं की लम्बाई भी समान दिखाई गई है। चित्र-5 में बाईं ओर के दो व चार बलों वाली व्यवस्थाएँ सन्तुलन में हैं, व दाहिनी ओर की व्यवस्थाएँ असन्तुलित हैं। क्या आप इन चित्रों को देखकर बता सकते हैं कि ऐसा क्या है जो किसी व्यवस्था को सन्तुलित व दूसरी को असन्तुलित बनाता है, और हम उसकी पहचान कैसे कर सकते हैं?

एक तरीका है कि हम यह देखें कि किस व्यवस्था में हर एक बल की ठीक विपरीत दिशा में भी एक बल लग रहा है। ऐसा हुआ तो बलों की व्यवस्था सन्तुलित होगी, जैसे कि चित्र-5a, 5b व 5c में दिखाई गई व्यवस्थाएँ। और अगर ऐसा नहीं हुआ तो व्यवस्था असन्तुलित होगी, जैसे कि चित्र-5d, 5e व 5f में दिखाई गई व्यवस्थाएँ।

लेकिन क्या यह तरीका तीन बलों की व्यवस्था की पड़ताल करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है?

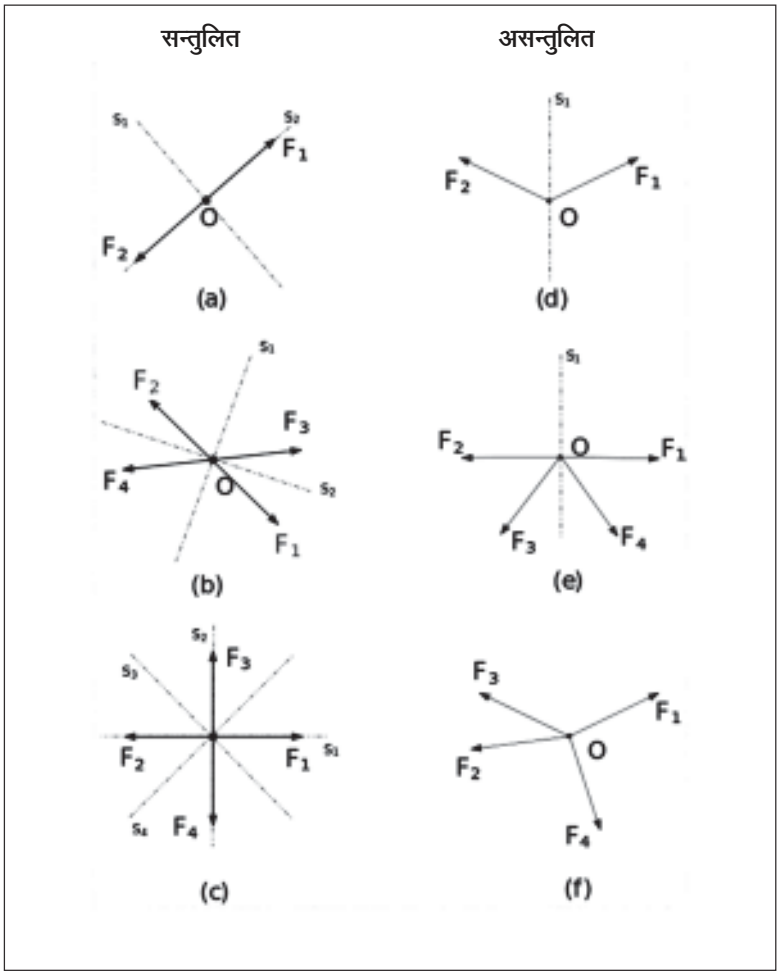

चित्र-5: सन्तुलित व असन्तुलित बलों की व्यवस्थाएँ।

ज़ाहिर तौर पर तीन समान मान के बलों को चाहे जैसे भी जमाने की कोशिश करें, हम ऐसी व्यवस्था नहीं बना सकते जिसमें हर एक बल की ठीक विपरीत दिशा में भी एक बल लग रहा हो। तो यह तरीका सिर्फ ऐसी ही व्यवस्था की पड़ताल करने में काम आ सकता है जिसमें बलों की

संख्या 2 से विभाजित की जा सके, यानी कि सम संख्या हो।

अब हमें कोई ऐसा तरीका खोजना होगा जो बलों की किसी भी संख्या वाली व्यवस्था के लिए इस्तेमाल किया जा सके।

अगर आप गौर करें तो देखेंगे कि चित्र-5 में जो व्यवस्थाएँ सन्तुलित हैं, उनमें कम-से-कम दो ऐसे अक्ष या लाइनें हैं जो उस व्यवस्था को दो समरूप भागों में बाँटतीं हैं। यानी कि इन अक्षों के दाईं व बाईं ओर के बलों की व्यवस्था एक-सी ही है। ऐसी किसी भी लाइन को हम सममिति की रेखा (line of symmetry) कहेंगे। चित्र 5a व 5b की व्यवस्थाओं में ऐसे दो अक्ष हैं S_1 और S_2। वहीं 5c की व्यवस्था में ऐसे चार अक्ष हैं। दूसरी ओर, असन्तुलित व्यवस्थाओं में या तो ऐसा एक ही अक्ष है (चित्र-5d व 5e) या एक भी नहीं (चित्र-5f)।

अब सवाल उठता है कि क्या हम तीन बलों की व्यवस्था को ऐसे बना सकते हैं कि उसमें कम-से-कम दो सममिति की रेखाएँ हों? और क्या यह तरीका हो सकता है जाँचने का कि तीन या ऐसी ही किसी विषम संख्या वाली बराबर मान के बलों की व्यवस्था सन्तुलित है या नहीं?

सबसे पहले तो हम तीन बलों को

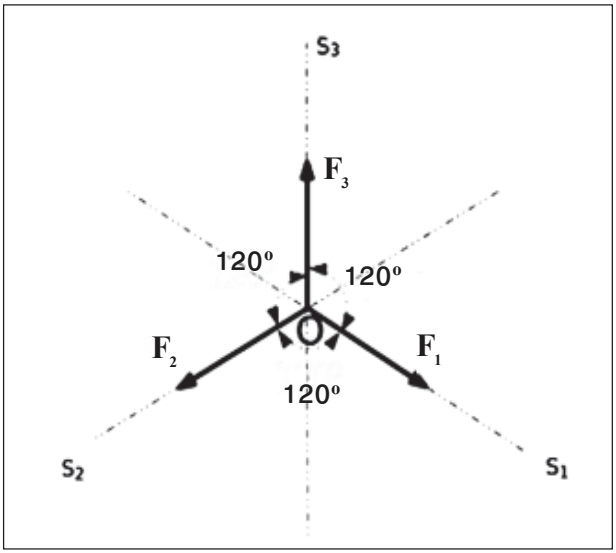

चित्र-6: तीन समान बलों की सन्तुलित व्यवस्था

ऐसे रखने की कोशिश करते हैं कि उसमें कम-से-कम दो सममिति की रेखाएँ हों। अगर आप ऐसा कर पाएँ तो आपको चित्र-6 में दिखाई गई व्यवस्था मिलेगी, जिसमें हर एक बल अपने बगल वाले बल से 120^0 के कोण पर है जिसके चलते इस व्यवस्था में दो नहीं बल्कि तीन सममिति की रेखाएँ हैं। और यह व्यवस्था सन्तुलित होगी। आइए देखते हैं क्यों। लेकिन उससे पहले ज़रा यह देख लें कि संख्या 'दो' में क्या खास बात है।

'दो' में ऐसा क्या है खास?

अगर हमें किसी कागज़ पर एक खास बिन्दु की स्थिति बतानी हो तो हम कैसे बताएँगे? हम कह सकते हैं कि निचले छोर से वह बिन्दु फलाँ दूरी पर है। पर क्या इतना बताना ही काफी होगा? नहीं! क्योंकि निचले छोर से उस दूरी पर अनगिनत बिन्दु होंगे। अगर हम निचले छोर के साथ-साथ ऊपरी छोर से भी बिन्दु की दूरी बतलाएँ तब क्या हम बिन्दु की स्थिति को सही-सही बतला सकते हैं? इसका जवाब भी नकारात्मक होगा। सोचिए क्यों।

असल में एक कागज़ पर किसी भी बिन्दु की स्पष्ट स्थिति बतलाने के लिए हमें दो ऐसे किनारों को लेना होगा जो एक ही दिशा को न दर्शाते हों, वे समानान्तर न हों (देखें चित्र-7)। जैसे कि निचला व बायाँ, या निचला व दायाँ, या ऊपरी व दायाँ, या कि ऊपरी व बायाँ। इनमें से किसी भी एक जोड़े का इस्तेमाल कर हम एक कागज़ पर किसी भी बिन्दु की

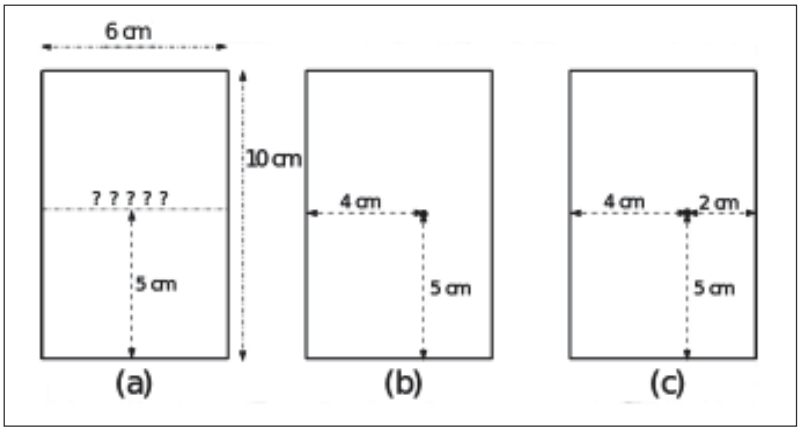

चित्र-7: (a) सिर्फ एक किनारे से बतलाई गई बिन्दु की अस्पष्ट स्थिति, (b) दो गैर-समानान्तर किनारों से बतलाई गई बिन्दु की स्पष्ट स्थिति, (c) ज़रूरत से ज़्यादा जानकारी

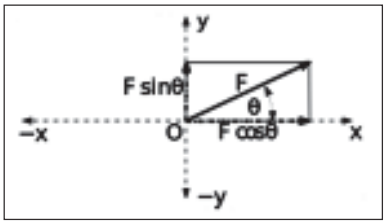

चित्र-8: सदिश राशियों का ग्राफ आधारित निरूपण

स्थिति स्पष्ट तरीके से बता सकते हैं। अगर हमें किसी बिन्दु की स्थिति तीन किनारों से पता हो तो हमारे पास ज़रूरत से ज़्यादा जानकारी होगी।

एक कागज़ या समतल (जैसे कि टेबल) पर किसी बिन्दु को स्पष्ट तौर से दर्शाने के लिए हमें दो स्वतंत्र दिशाओं की ज़रूरत पड़ती है। इसीलिए एक ग्राफ बनाते समय भी हम सबसे पहले दो स्वतंत्र अक्षों को दर्शाते हैं। आसानी के लिए हम इनके बीच का कोण 90^0 का ले लेते हैं।

ऐसे ही एक बल को हमने चित्र-8 के ग्राफ में दर्शाया है। बल जिस बिन्दु पर लग रहा है उसे ही हमने सन्दर्भ-बिन्दु मान लिया है। चूँकि बल एक सदिश राशि है तो हमें ग्राफ पर इसकी लम्बाई, जो इसके मान को दर्शाएगी, के साथ-साथ यह भी दिखाना होगा कि बल किस दिशा में लग रहा है[1]।

सदिश राशियों से जुड़े गणितीय नियमों से हम जानते हैं कि हम इन राशियों को चित्र-8 में दिखाए अनुसार x-अक्ष व y-अक्ष के भागों में बाँटकर देख सकते हैं। इस तरह अगर आप चित्र-6 में दिखाई गई व्यवस्था के बलों को उनके x-अक्ष व y-अक्ष के भागों में बाँटकर देखेंगे तो पाएँगे कि इन दोनों अक्षों की दिशाओं में लगने वाले बल एक-दूसरे को काट रहे हैं, जिस वजह से यह व्यवस्था सन्तुलन में है।

चित्र-9 में इस व्यवस्था को एक अलग तरह से दर्शाया गया है। इस व्यवस्था के सभी बलों को उनके x-अक्ष व y-अक्ष के भागों में बाँटकर तालिका-1 में दिखलाया गया है। तालिका में आप देख सकते हैं कि बिन्दु O पर लगने वाला कुल बल

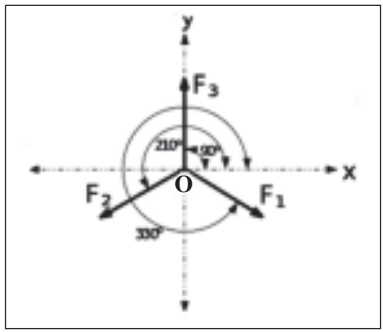

चित्र-9: चित्र-6 की बल व्यवस्था का एक अलग निरूपण

[1] *यहाँ भी एक बल को ग्राफ पर दर्शाने के लिए हमें दो राशियों की आवश्यकता पड़ रही है। लेकिन इस मामले में इनमें से एक राशि लम्बाई को दर्शा रही है व दूसरी कोण को।*

बल	θ	cos θ	sin θ	F cos θ (x भाग)	F sin θ (y भाग)
$F_1=F$	330^o	$\frac{\sqrt{3}}{2}$	$-\frac{1}{2}$	$\frac{\sqrt{3}F}{2}$	$-\frac{F}{2}$
$F_2=F$	210^o	$-\frac{\sqrt{3}}{2}$	$-\frac{1}{2}$	$-\frac{\sqrt{3}F}{2}$	$-\frac{F}{2}$
$F_3=F$	90^o	0	1	0	F
x व y दिशा में लगने वाला कुल बल				0	0

तालिका-1: चित्र-9 में दर्शाई गई व्यवस्था के बलों का विघटन

शून्य के बराबर है, जिस वजह से यह एक सन्तुलित बल व्यवस्था है।

हमने सममिति की रेखाओं वाले जिस तरीके का ज़िक्र पहले किया वो सिर्फ उन व्यवस्थाओं पर ही लागू किया जा सकता है जिनमें सभी बल समान मान के हों। बलों को उनके भागों में बाँटकर देखने के तरीके से आप किसी भी तरह की बल-व्यवस्था के सन्तुलन में होने या न होने का पता लगा सकते हैं।

क्या हो पाएगा सन्तुलन?

यह साफ हो जाने के बाद कि एक ही तल व बिन्दु पर लग रहे तीन बराबर मान के बलों के लिए सन्तुलन की स्थिति क्या होगी, आइए अब रस्साकशी के खेल पर वापिस चलते हैं। चित्र-3 के सन्दर्भ में हमने देखा कि तीसरे बल के लगने के साथ दो बलों की सन्तुलित व्यवस्था असन्तुलित हो जाएगी। पर सवाल यह उठता है कि क्या यह नई व्यवस्था सन्तुलन में आ पाएगी? आप शायद सोच रहे हों अब जबकि हमें पता है कि तीन बलों की व्यवस्था किस स्थिति में सन्तुलित होती है, यह सवाल उठाने का क्या मतलब। सीधी-सी बात लगती है कि जैसे ही हम तीसरा बल दो बलों की सन्तुलित व्यवस्था में जोड़ेंगे तो बिन्दु O अपनी पुरानी जगह से हटकर उस स्थिति में जाने की कोशिश करेगा जिसमें यह नई व्यवस्था सन्तुलित हो यानी कि चित्र-6 वाली स्थिति। लेकिन क्या यह हमेशा हो पाएगा? अगर ऐसा हो पाता तो इस लेख को हम आगे न बढ़ाते। मज़ेदार बात यही है कि ऐसा हमेशा सम्भव नहीं होगा, क्योंकि नई व्यवस्था का सन्तुलित या असन्तुलित होना इस बात पर निर्भर करता है कि तीनों बलों की पारस्परिक स्थिति कैसी है। आइए समझने की

बॉक्स -1

वैसे तो रेखाचित्र देखकर ही स्पष्ट हो जाता है कि $\beta_3 > \alpha_3$ परन्तु यहाँ हम ज्यामितीय आकृतियों एवं समीकरणों की मदद से इसे प्रमाणित करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कि $\beta_3 > \alpha_3$ होगा हम दो अलग तथ्यों की मदद लेंगे।

1. किसी भी त्रिभुज के सभी आन्तरिक कोणों का जोड़ 180^0 के बराबर होता है, व

2. त्रिभुज के अन्दर O जैसे किसी भी बिन्दु के लिए बनने वाले कोण s_1 व s_2 क्रमशः α_1 व α_2 से छोटे होंगे।

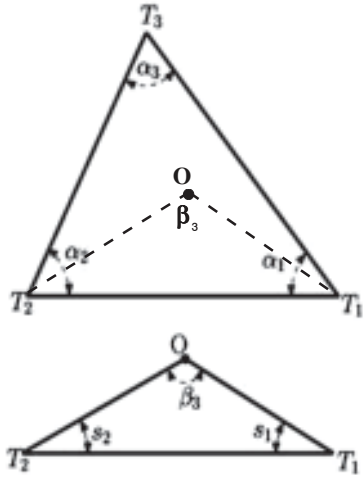

पहले तथ्य की मदद से हम देख सकते हैं कि त्रिभुज $T_1T_3T_2$ के लिए:

$$\alpha_1 + \alpha_2 + \alpha_3 = 180^0 \quad (1)$$

व त्रिभुज T_1OT_2 के लिए:

$$s_1 + s_2 + \beta_3 = 180^0 \quad (2)$$

समीकरण (1) व (2) को मिलाकर देखें तो हम कह सकते हैं कि:

$$\alpha_1 + \alpha_2 + \alpha_3 = s_1 + s_2 + \beta_3 \quad (3)$$

इसी तरह दूसरे तथ्य से हमें पता चलता है कि:

$$\alpha_1 > s_1 \quad (4) \quad \text{और} \quad \alpha_2 > s_2 \quad (5)$$

समीकरण (4) व (5) को मिलाकर देखें तो हम कह सकते हैं कि:

$$\alpha_1 + \alpha_2 > s_1 + s_2 \quad (6)$$

समीकरण (3) व (6) की तुलना करने पर हम साफ-साफ देख सकते हैं कि $\beta_3 > \alpha_3$ होगा।

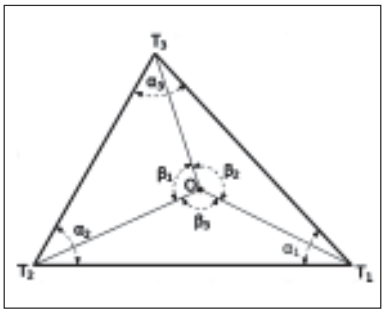

चित्र-10: टीमों की स्थिति से बनता त्रिकोण

कोशिश करते हैं।

चित्र-10 में दिखाए अनुसार तीनों टीमों की स्थिति एक त्रिभुज बनाती है जिसमें α_1, α_2 व α_3 क्रमशः T_1, T_2 व T_3 कोनों पर बनने वाले आन्तरिक कोण हैं। अब अगर इस त्रिभुज के अन्दर हम एक बिन्दु O लें व उसे त्रिभुज के कोनों से जोड़कर कोण β_1, β_2 व β_3 बनाएँ तो हम देख सकते हैं कि त्रिभुज के अन्दर O की किसी भी स्थिति के लिए $\beta_1>\alpha_1$, $\beta_2>\alpha_2$ व $\beta_3>\alpha_3$ होगा। त्रिभुज $T_1T_3T_2$ व T_1OT_2की तुलना कर इस तथ्य को आसानी से देख सकते हैं कि $\beta_3>\alpha_3$ होगा। इसी तरह त्रिभुज $T_1T_3T_2$ की क्रमशः T_1OT_3 व T_2OT_3से तुलना करके देखा जा सकता है कि $\beta_2>\alpha_2$ व $\beta_1>\alpha_1$ होगा। करके देखिए या देखिए बॉक्स-1।

आप यह भी देखेंगे कि जैसे-जैसे बिन्दु O की एक कोने से दूरी बढ़ती जाती है, उस कोने से सम्बन्धित कोण भी बड़ा होता जाता है। उदाहरण के तौर पर, अगर बिन्दु O, T_3 से दूर जाए तो β_3 का मान बढ़ेगा। इसका मतलब हुआ कि β_3 सबसे छोटा तब होगा जब बिन्दु O व T_3 एक ही जगह पर हों व सबसे बड़ा तब जब बिन्दु O लाइन T_2T_1 पर हो। इस तरह हम कह सकते हैं $180^0 \geq \beta_3 \geq \alpha_3$। इसका मतलब हुआ कि अगर α_3 का मान 120^0 से ज़्यादा हुआ तो कोण $\beta_3>120^0$ होगा। β_1 व β_2 के लिए भी यही बात लागू होगी।

इन कोणों व इनके बीच के सम्बन्धों पर इतनी बातचीत के बाद ये बातें साफ हो जाती हैं कि,

- अगर तीनों बलों की पारस्परिक स्थिति ऐसी है कि तीनों में से कोई भी आन्तरिक कोण 120^0 से बड़ा न हो तो पक्के तौर से त्रिभुज के अन्दर एक ऐसा बिन्दु होगा जिस पर चित्र-6 में दिखलाई गई सन्तुलन की स्थिति बनेगी। इस स्थिति में बिन्दु O इस बिन्दु पर जाकर रुक जाएगा व तीन बराबर बलों की व्यवस्था सन्तुलन में होगी। रस्साकशी के खेल के सन्दर्भ में देखें तो कोई भी टीम नहीं जीतेगी।
- दूसरी तरफ, अगर कोई भी आन्तरिक कोण 120^0 के बराबर या उससे ज़्यादा हुआ तो त्रिभुज के अन्दर ऐसा कोई भी बिन्दु नहीं होगा। ऐसी स्थिति में बिन्दु O उस कोने

की तरफ जाएगा जिस पर आन्तरिक कोण 120^0 के बराबर या उससे ज़्यादा हो। जिसका मतलब रस्साकशी के खेल के सन्दर्भ में यह हुआ कि वो टीम जीतेगी जिसके कोने पर बनने वाला आन्तरिक कोण 120^0 के बराबर या उससे ज़्यादा हो।

***

कुल मिलाकर इस लेख में हमने देखा कि एक बिन्दु पर लग रहे तीन समतल व बराबर बलों की एक व्यवस्था का सन्तुलन में होना या न होना बलों की आपसी स्थिति पर निर्भर करता है।

तो अगर आप रस्साकशी के एक ऐसे खेल में पड़ गए हों जिसमें टीमें तीन हों एवं वे बराबर मान का बल लगा रही हों और आप स्वतंत्र हों अपनी टीम का स्थान चुनने के लिए तो अब आपको पता है कि जीतने के लिए आपको क्या करना होगा!

विवेक मेहता: आई.आई.टी., कानपुर से मेकेनिकल इंजीनियरिंग में पीएच.डी. की है। एकलव्य के विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ फैलोशिप पर हैं।

फॉर्म 4 (नियम-8 देखिए)

द्वैमासिक शैक्षणिक संदर्भ के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में जानकारी

प्रकाशन स्थल :	भोपाल
प्रकाशन की अवधि :	द्वैमासिक
प्रकाशक का नाम :	अरविन्द सरदाना निदेशक, एकलव्य
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर भोपाल, म. प्र. 462016
मुद्रक का नाम :	अरविन्द सरदाना निदेशक, एकलव्य
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर भोपाल, म. प्र. 462016
सम्पादक का नाम :	राजेश खिंदरी
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर भोपाल, म. प्र. 462016

उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है

नाम :	अरविन्द सरदाना, निदेशक, एकलव्य
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर भोपाल, म. प्र. 462016

मैं अरविन्द सरदाना, निदेशक, एकलव्य यह घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

अरविन्द सरदाना, निदेशक, एकलव्य, फरवरी 2015

उल्लू की नज़र

विनता विश्वनाथन

अपने स्नातकोत्तर शोध के दौरान मैंने काफी समय जंगलों में बिताया है। जंगल में रहना मेरे जैसे शहरी के लिए चुनौती-भरा तो था, साथ में बहुत मज़ा भी आता था। उन दिनों की एक बात मुझे बहुत अच्छी लगती थी - रात को जागकर जंगल की आवाज़ें सुनना। हमारा कमरा गाँव

से कुछ दूर था और रात के सन्नाटे में जानवरों की विभिन्न आवाज़ें सुनाई देती थीं। चीतल-साम्भर, रीछ-तेन्दुआ, टिटहरी-उल्लू, चमगादड़, मेंढक, झींगुर आदि सुनने को मिलते थे। इनमें से मुझे बहुत पसन्द थी एक धीमी और गहरी आवाज़ में हु-हु-हऊऊऊऊ। ये ब्राउन फिश आउल की आवाज़ थी। कभी एक ही उल्लू की आवाज़ सुनाई देती, कभी दो उल्लू बातें कर रहे होते। कभी-कभी दोनों बातें करते हुए, धीरे-धीरे जंगल से गुज़र रहे होते - उनकी आवाज़ें एक दिशा में जाती हुई सुनाई देतीं। डेढ़-दो फुट के इस पक्षी को मैंने दिन में एक ही बार देखा था (ब्राउन फिश आउल ज़्यादातर उल्लुओं की तरह दिन में आराम करते हैं और रात को सक्रिय रहते हैं) लेकिन इनकी आवाज़ अक्सर सुनाई देती थी।

उल्लुओं के बारे में उस समय कम ही जानती थी लेकिन उन्हें पहचानने में कभी दिक्कत नहीं होती थी। उनके चेहरे का नक्शा और उनकी आँखें अन्य पक्षियों से काफी अलग जो हैं। उल्लुओं की आँखें सचमुच बहुत बड़ी होती हैं - शरीर के आकार को ध्यान में रखते हुए शायद ही किसी और जन्तु की आँखें उल्लू जितनी बड़ी होंगी। 2-3 फुट के कुछ उल्लुओं की आँखें 5-6 फुट के मनुष्यों की आँखों जितनी होती हैं। इनकी आँखें ही नहीं, पुतलियाँ भी बड़ी होती हैं जो ज़्यादा-से-ज़्यादा प्रकाश आँख के अन्दर आ पाए यह सम्भव बनाती हैं। इस

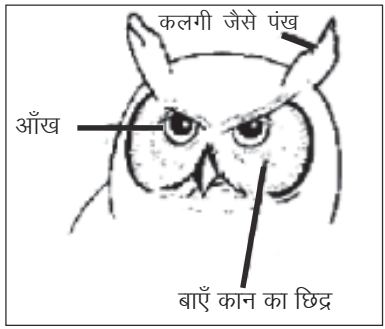

चित्र-1: उल्लू का चपटा चेहरा।

तरह उल्लू रात के अँधेरे में भी, बहुत ही कम रोशनी में देख पाते हैं। उल्लुओं की आँखों की कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं। अन्य पक्षियों जैसे उल्लुओं की आँखें सिर के दाईं-बाईं ओर स्थित नहीं होतीं; बल्कि चपटे चेहरे पर सामने की तरफ होती हैं (चित्र-1)। और उल्लू अपनी आँखों को हिला-घुमा नहीं सकते। रास्ते पर खड़े आते-जाते लोगों को कुछ हद तक हम सिर्फ अपनी आँखें यानी आँखों की पुतलियाँ फेरकर भी देख सकते हैं। उल्लू ऐसा नहीं कर सकते। सामने की तरफ अगर नज़र केन्द्रित करते हैं, तो कई जानवरों की तुलना में उल्लू का दृष्टि-क्षेत्र (field of vision, बिना सिर या गर्दन घुमाए जितना इलाका नज़र आता है) सबसे कम है (चित्र-2, 3)। किसी अलग दिशा में देखना हो तो उल्लू को अक्सर सिर घुमाना ही पड़ता है। शायद इसलिए वे लगभग 270 डिग्री तक गर्दन घुमा सकते हैं। यानी कि सामने देखने वाला उल्लू सिर घुमाकर न केवल यह

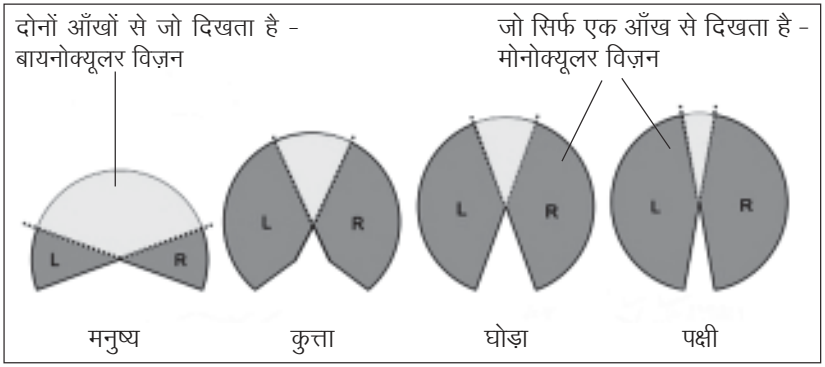

चित्र-2: L - बाईं, R - दाईं।

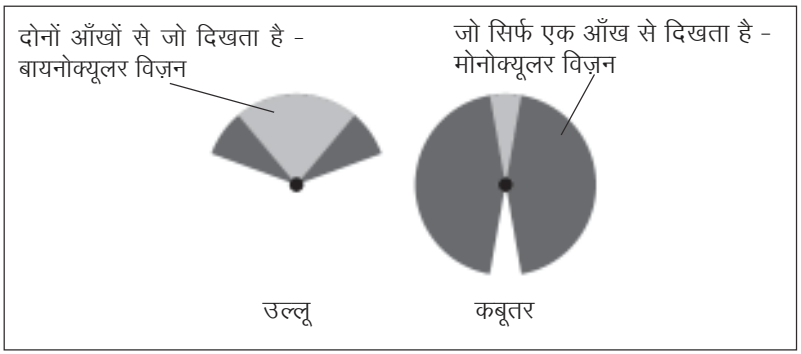

चित्र-3: कबूतर की तुलना में उल्लू का दृष्टि क्षेत्र। दृष्टि क्षेत्र बायनोक्यूलर और मोनोक्यूलर विज़न दोनों से बनता है। बायनोक्यूलर विज़न से हम यह बेहतर समझ सकते हैं कि कोई जीज़ कितनी गहराई पर है, उसे 3-D में देखते हैं।

देख सकता है कि पीछे क्या हो रहा है, दाईं ओर मुड़ते-मुड़ते बाईं तरफ भी देख सकता है। और ऊपर देखते-देखते, अपना सिर उल्टा करके पीछे की तरफ भी देख सकता है।

आप अपना सिर कितना घुमा सकते हैं? हम मनुष्य अपने सिर को सिर्फ 90 डिग्री घुमा सकते हैं। अपने पीछे क्या हो रहा है, यह देखने के लिए हमें शरीर को मोड़ना पड़ता है। अगर हम उल्लुओं जैसे गर्दन मोड़ते-मरोड़ते तो मस्तिष्क तक खून पहुँचाने वाली नलियाँ बन्द हो जातीं और हम बेहोश हो जाते। फिर उल्लू ऐसी हरकत अपने आप को बिना नुकसान पहुँचाए कैसे करते हैं? शोध से हमें इस सवाल के

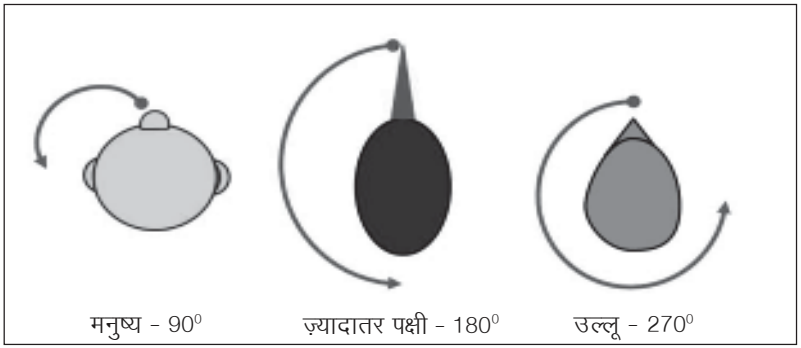

चित्र-4: मनुष्य और पक्षी खोपड़ी कितनी घुमा सकते हैं।

कुछ जवाब मिले हैं।

सिर को 270 डिग्री घुमाने के लिए दो समस्याओं को हल करना होता है। पहला गर्दन, खासकर सख्त हड्डियों को इतना लचीला कैसे बनाया जाए, और दूसरा मस्तिष्क तक खून का बहाव कैसे बनाए रखें। उल्लुओं की गर्दन की संरचना और उसके लचीलेपन को हम साइकिल की चेन के उदाहरण से समझ सकते हैं। मान लेते हैं कि सामान्य साइकिल की चेन में 90 कड़ियाँ हैं। अगर उतनी ही लम्बाई की चेन 90 छोटी कड़ियों की बजाय 10 बड़ी कड़ियों की बनी होती तो क्या होता - साइकिल चलाते समय क्या चेन सुचारू घूमती, क्या साइकिल आसानी से चलती? समझ में आता है कि उतनी ही लम्बाई में जितने ज़्यादा लिंक, चेन में उतना लचीलापन और चेन उतनी अच्छी तरह से घूम पाती है। रीढ़धारी जानवरों की गर्दन भी कुछ ऐसे ही - कशेरुकों की एक चेन जैसी बनी होती है। मनुष्यों (और सभी स्तनधारी जानवरों) की गर्दन में 7 की तुलना में उल्लुओं की गर्दन में 14 कशेरुक हड्डियाँ होती हैं। इस तरह, कम लम्बाई की गर्दन में ज़्यादा जोड़ होने के कारण उल्लू गर्दन आसानी से और हमसे ज़्यादा घुमा सकते हैं।

वैसे पक्षियों के लिए यह खास बात नहीं है क्योंकि उनकी गर्दन में 11से 25 तक कशेरुक होते हैं। हंस जैसे लम्बी गर्दन वाले पक्षियों के मेरूदण्ड के इस क्षेत्र में 22-25 कशेरुक होते हैं और इसलिए उनकी गर्दन काफी लचीली होती है। लेकिन उल्लुओं की गर्दन बहुत लम्बी नहीं होती। फिर भी स्क्रू की तरह उसे 270 डिग्री घुमा लेते हैं। हाल ही में हुए शोध से पता चला है कि उल्लुओं के कशेरुकों की संरचना और उनके बीच जोड़ की कुछ विशेषताएँ उनके लचीलेपन का राज़ हैं।

अब दूसरी समस्या पर आते हैं -

मस्तिष्क तक खून के बहाव को रोके बिना सिर कैसे घुमाया जाए। उल्लुओं की रक्त धमनियों की कई खास बातें हैं जिनके कारण वे बिना दिक्कत गर्दन मोड़ सकते हैं। रीढ़धारी जन्तुओं में ग्रीवा धमनियाँ (carotid arteries), जो मस्तिष्क को खून पहुँचाती हैं, गर्दन में दाईं व बाईं ओर पाई जाती हैं। उल्लुओं में ये धमनियाँ गर्दन के बाजूवाले हिस्सों में न होकर, रीढ़ के बिलकुल आगे, गर्दन के बीच में होती हैं। तो जब हम अपना सिर घुमाते हैं तो गर्दन में ये धमनियाँ उल्लुओं की धमनियों से ज़्यादा मुड़ती हैं। साइकिल के पहिए का सोचिए - एक चक्कर में पहिए के बाहरी भाग पर एक बिन्दु जितना घूमता है, अन्दर के गोले पर स्थित बिन्दु उसकी तुलना में बहुत कम घूमता है (चित्र-5)।

फिर मनुष्यों में गर्दन की हड्डियों में गुहिकाएँ यानी सुराख सिर्फ इतने बड़े होते हैं कि धमनियाँ उनमें से निकल जाएँ। उल्लुओं में धमनियों के लिए मनुष्यों से दस गुना ज़्यादा जगह होती है और इसलिए सिर घुमाते समय, धमनियाँ भी बिना बहुत कसे मुड़ सकती हैं। साथ में, ग्रीवा और अन्य धमनियों के बीच नलियाँ पाई जाती हैं। अगर गर्दन मुड़ते समय कोई धमनी बन्द हो जाती है, तो खून किसी अन्य नलिका या धमनी से निकल सकता है (चित्र-6, (क))। सबसे अनोखी बात तो यह है कि उल्लुओं में खोपड़ी के नीचे, ग्रीवा धमनियों में चौड़े खण्ड होते हैं जो फैलने पर खून से भर जाते हैं। यह संरचना किसी और जन्तु में नहीं पाई गई। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह खून का एक कुण्ड, एक स्रोत है। जब मस्तिष्क तक खून का बहाव चाहे कुछ क्षण के लिए ही रुक जाता है, तो यहाँ से खून मस्तिष्क में पहुँचता है (चित्र-6, (ख))। शायद इसी

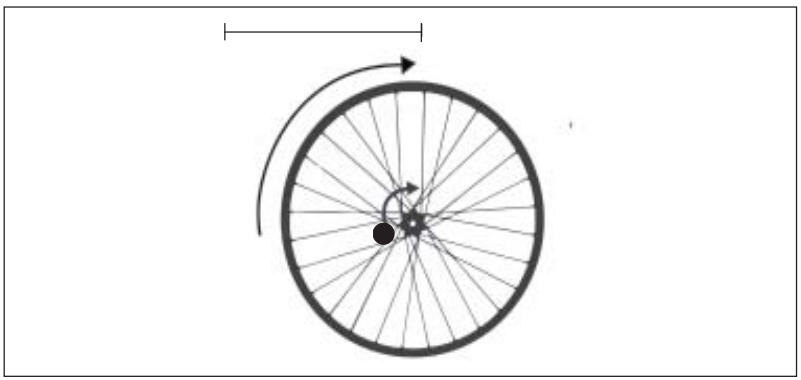

चित्र-5: साइकिल का पहिया जब एक चौथाई घूमता है तो बाहरी घेरे का बिन्दु अन्दर के घेरे पर स्थित बिन्दु से कहीं ज़्यादा घूमता है।

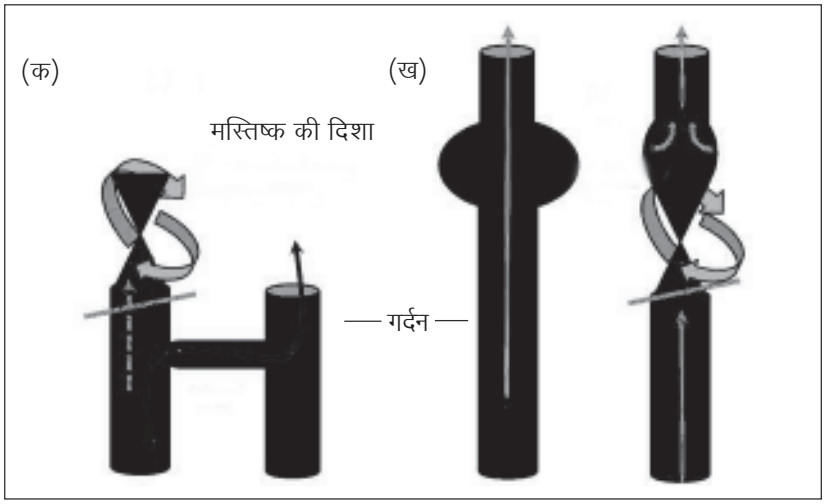

चित्र-6: जब गर्दन मुड़ती है तो कैरॉटिड धमनियाँ कस जाती हैं। ऐसे में मस्तिष्क तक खून (क) वैकल्पिक धमनियों से या (ख) कुण्ड स्रोत से मस्तिष्क में पहुँचता है।

उल्लुओं की घटती आबादी

भारत में उल्लुओं की 30 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। आज तक इनका कोई व्यवस्थित आंकलन नहीं हुआ है, लेकिन पक्षी वैज्ञानिकों का कहना है कि पिछले कुछ दशकों से उल्लू कम दिख रहे हैं। मुमकिन है कि जंगलों का कटना और उनकी गुणवत्ता में घटाव (forest degradation) इसका प्रमुख कारण है। वन्यजीव व्यापार के जानकार कहते हैं कि इन निशाचर जीवों को जादू-टोना और तावीज़ों में इतना इस्तेमाल किया जाता है कि उनका काफी शिकार होता है। यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है उल्लुओं के कम दिखने का। जिन उल्लुओं के सिर पर, आँखों के ऊपर कलगी जैसी संरचनाएँ होती हैं, पूजा और जादू के लिए श्रेष्ठ मानी जाती हैं। ऐसे उल्लू ज़्यादा मात्रा में मारे जाते हैं। उल्लुओं का व्यापार देशी व अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों स्तर पर होता है। मृत व जीवित और छोटे-बड़े, सब किस्म के उल्लू बिकते हैं। नेपाल, थायलैण्ड, चीन और बर्मा में पहुँचने वाले वन्यजीवों में उल्लुओं की संख्या काफी होती है और सप्लाई कम होने के कारण पिछले कुछ सालों में उनका बाज़ारू भाव 10 गुना बढ़ा है।

कारण उल्लू पीठ दिखाते समय भी हमें आसानी से नज़र में रख सकते हैं।

इन अनुकूलनों के बावजूद, उल्लू शिकार के लिए अपनी दृष्टि पर नहीं, अपने सुनने की क्षमता पर ज़्यादा निर्भर होते हैं। उल्लुओं के कान भी उनकी आँखों की तरह चेहरे की चपटी सतह पर होते हैं और कई प्रजातियों में एक कान, दूसरे से कुछ ऊपर स्थित होता है। वे इतना अच्छा सुनते हैं कि घोर अँधेरे में भी किसी शिकार (चूहे, छछूँदर जैसे छोटे जानवर) की आवाज़ मात्र से उसे पकड़ सकते हैं।

एक और बात है जिसके कारण वे बेहतर शिकारी हैं - उल्लू चुपचाप उड़ते हैं। उनके पर ऐसे आकार के हैं कि उड़ते समय कम-से-कम आवाज़ करते हैं। साथ में उनके शरीर पर पंखों का घनत्व अन्य पक्षियों से कहीं अधिक है - जो उड़ते समय आवाज़ों को सोख लेते हैं। सोचिए, रात को बिना किसी आवाज़ के उड़ते हुए, बड़ी-बड़ी आँखों वाले ये पक्षी शायद डरावने लगते होंगे, लेकिन मुझे तो ये सुन्दर लगते हैं।

कुछ सालों से एक छोटे शहर में, जंगल से दूर रह रही हूँ। रात को बाइक-ऑटो की आवाज़ों के बीच स्कॉप्स आउल या बार्न आउल की आवाज़ें जब सुनती हूँ तो अच्छा लगता है - ऐसा आभास होता है कि वन्यजीव के बीच आज भी रह रही हूँ।

विनता विश्वनाथनः 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सुतली और हुनर का मेल!

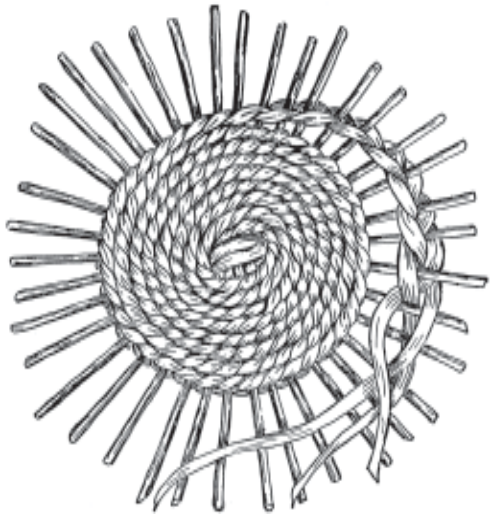

जैसे - *संदर्भ*

एक प्रति का मूल्य 30 रुपए
एक साल की सदस्यता 150 रुपए
तीन साल की सदस्यता 400 रुपए

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

एकलव्य
ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शंकर नगर,
शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. पिन 462016
फोनः 0755 - 2671017, 2550976
www.eklavya.in/sandarbh
ई-मेलः sandarbh@eklavya.in

उबासी क्यों आती है?

निशी खण्डेलवाल

अपना मुँह खोलिए, जबड़े की माँसपेशियों और शरीर के ऊपरी भाग को थोड़ा खींचिए, धीरे-से साँस लीजिए और फिर तेज़ी से साँस छोड़िए। आपने क्या किया? जी हाँ, आपने उबासी ली। अपने आस-पास के लोगों को भी आपने उबासी लेते देखा होगा और हो सकता है कि उन्हें उबासी लेते देख आपको भी उबासी आ गई हो। क्या इसका मतलब ये हुआ कि यह एक तरह की छूत की समस्या है? ऐसा माना जाता है कि शरीर की सारी हरकतें, खास तौर से अनैच्छिक हरकतें किसी-न-किसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। इसलिए यह सवाल लाज़मी है कि उबासी किस उद्देश्य की पूर्ति करती है। या सीधे-सादे शब्दों में उबासी आती ही क्यों है?

एक आम अनुभव

हमारे अनुभव ये बताते हैं कि

नवजात शिशु भी उबासी लेता है। यहाँ तक कि अल्ट्रासाउण्ड निरीक्षण के दौरान 20 सप्ताह के शिशुओं की गर्भ में उबासियाँ रिकॉर्ड की गई हैं। इससे तो ऐसा लगता है कि उबासी का आना हमारे लिए काफी महत्वपूर्ण है और इस पर नियंत्रण कर पाना सम्भव नहीं। यह अनियंत्रित क्रिया सामान्यतः 6 सैकण्ड की होती है जिसके दौरान विभिन्न शारीरिक परिवर्तन होते हैं - हृदय गति का बढ़ना, दिमाग में होने वाले तंत्रिका परिवर्तन आदि।

केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि अन्य जानवरों में भी उबासी आना देखा गया है। चार्ल्स डार्विन ने इस ओर इशारा किया था कि बबून (अफ्रीका में पाए जाने वाले कुछ बन्दर) अपने दुश्मन को डराने के लिए उबासी लेते हैं और ऐसा करते हुए वे दुश्मन को अपने बड़े-बड़े दाँतों से डराने की कोशिश करते हैं। ऐसा ही कुछ विचार उनका गिनी-पिग (चूहा-गिलहरी के परिवार का एक सदस्य) के बारे में था, कि वे उबासी के द्वारा अपना गुस्सा दिखाते हैं। इसी तरह बिल्लियाँ भी उबासी लेते हुए शरीर तानकर अपने सामान्य आकार से दुगनी हो जाती हैं और अपने दुश्मन को डराने की कोशिश करती हैं।

चूँकि उबासी सभी की रोज़मर्रा ज़िन्दगी के अनुभव से जुड़ा सवाल है इसलिए इसकी व्याख्या हर कोई अपने अनुसार देने लगता है। और क्यों नहीं, रात को सोने से पहले, सुबह उठने के

गर्भ में उबासी लेते हुए शिशु का अल्ट्रा-साउण्ड चित्र।

बाद, किसी काम को लगातार करते रहने से, बहुत ज़्यादा थकान महसूस होने या आराम की स्थिति में जाने आदि-आदि परिस्थितियों में सभी के उबासी लेने के अनुभव हैं।

उबासी आने के इन आम अनुभवों के कारण इसमें वैज्ञानिकों की रुचि स्वाभाविक है जिसके प्रमुख कारण कुछ इस प्रकार हैं। पहला तो यह कि उबासी की क्रिया हमारे साथ-साथ लगभग सारे रीढ़धारी प्राणियों में देखी गई है। दूसरा कि उबासी आम अनुभव ही नहीं, यह कई विभिन्न परिस्थितियों में प्रकट होती है। और तीसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि लोग देखा-देखी

उबासियाँ लेने लगते हैं।

उबासी क्यों आती है इसका पता लगाने और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बहुत-से अध्ययन किए गए हैं। ये अध्ययन उबासी आने के कारण ढूँढ़ने की और उनके आधार पर उबासी आने की व्याख्या अलग-अलग तरह से करते हैं। उबासियों के अध्ययनों में जैव-विकास की दृष्टि से ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया है[1]। अधिकांश अध्ययन इसके तात्कालिक कारणों पर ही केन्द्रित रहे हैं। इस लेख में हम कुछ अध्ययनों और उनके द्वारा सुझाई गई व्याख्याओं की चर्चा करेंगे।

परिकल्पनाएँ और परिणाम

बोरियत

सन् 1986 में महाविद्यालय के कुछ छात्रों पर किए गए प्रयोगों में पाया कि उस समय उबासी ज़्यादा आती है जब छात्रों को बोरियत महसूस होती है। इस अध्ययन में यह देखा गया कि छात्रों द्वारा 30 मिनट में कुछ रंगों के पैटर्न की पट्टियाँ देखने पर ली गई उबासियों की संख्या उतने ही समय में देखे गए रॉक विडियो के दौरान ली गई उबासियों की संख्या से कहीं ज़्यादा होती है। चूँकि रॉक विडियो को छात्र आनन्द से सुनते हैं अतः ये अवलोकन साफ तौर पर बोर होने की अवस्था में उबासी आने की ओर इशारा करते हैं। इसी तरह के कुछ अनुभव सामान्य तौर पर भी सुनने को मिलते हैं।

ऑक्सीजन की ज़रूरत

एक मान्यता थी कि उबासी तब ली जाती है जब शरीर को ज़्यादा ऑक्सीजन की ज़रूरत होती है। लेकिन मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय के डॉ. रॉबर्ट प्रॉविन द्वारा किए गए अध्ययनों ने अन्ततः इस धारणा को खारिज कर दिया। अपने अध्ययन में डॉ. प्रॉविन ने ऑक्सीजन की ज़रूरत और उसका उबासियों की संख्या पर प्रभाव देखने के लिए कुछ लोगों को एक कमरे में बैठाया और वहाँ हवा के संघटन को बदलते गए। सबसे पहले उन्होंने कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 3 से 5 प्रतिशत (आम तौर पर हवा में 0.03 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड होती है) करके लोगों में उबासी की दर को देखा। इसके बाद कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा को शून्य प्रतिशत कर उबासी की दर को मापा। उन्होंने पाया कि दोनों ही परिस्थितियों में उबासी की दर लगभग बराबर ही रहती है अतः यह परिकल्पना आगे न बढ़ सकी।

थकान

पुनः कुछ सामान्य अनुभवों की तरफ लौटें तो ऐसा माना जाता है कि थके

[1] *वैसे एक बात ध्यान में रखना ज़रूरी है - कई बार उद्देश्य की तलाश में हम काफी भटक जाते हैं, कभी-कभी क्रियाएँ आज के सन्दर्भ में निरुद्देश्य होती हैं, हालाँकि हो सकता है कि सुदूर अतीत में वे किसी उद्देश्य की पूर्ति करती रही हों। इसलिए कारण ढूँढ़ने में सावधानी बरतने की ज़रूरत होती है।*

होने पर उबासी ज़्यादा आती है। क्या ऐसा माना जाना सही है? इस व्याख्या की पुष्टि के लिए भी कुछ अध्ययन-अवलोकन किए गए और यह पाया गया कि व्यायाम से पहले, उसके दौरान और बाद में आई उबासियों की आवृति में कोई फर्क नहीं है।

सुस्ती-सक्रियता

उबासी आने की एक अन्य व्याख्या जागने और सक्रियता से जोड़कर दी जाती है। यह देखा जाता है कि अक्सर उबासी उँघाई/नींद आने की स्थिति में आती है। व्यावहारिक अध्ययन भी लगातार यह बताते हैं कि सबसे ज़्यादा उबासी सोने से पहले और सो कर उठने के समय आती है क्योंकि इस समय सक्रियता का स्तर बहुत कम होता है। जिस तरह से अन्य परिकल्पनाओं की जाँच के लिए कुछ प्रयोग किए गए, उसी तरह से इस परिकल्पना की जाँच वस्तुनिष्ठ तरीके से करने के लिए EEG (इलेक्ट्रो एनसेफैलोग्राफ) का इस्तेमाल कर मनुष्यों में उबासी आने के पहले और उसके बाद सतर्कता के स्तर में आए बदलाव को कुछ प्रयोगों द्वारा देखने की कोशिश की गई। EEG से यह पता चलता है कि दिमाग के किस भाग में विद्युतीय क्रियाएँ किस गति से चल रही हैं और उनका पैटर्न क्या है। दिमाग की विद्युतीय क्रिया से व्यक्ति की सक्रियता के स्तर का अन्दाज़ मिलता है। यह पाया गया कि उबासी आने के पूर्व सतर्कता का स्तर कम होता है और उसके पश्चात् अधिक। इसका यह मतलब हो सकता है कि उबासी सतर्कता के स्तर को बढ़ाने के लिए आती है। परन्तु बाद में हुए कुछ

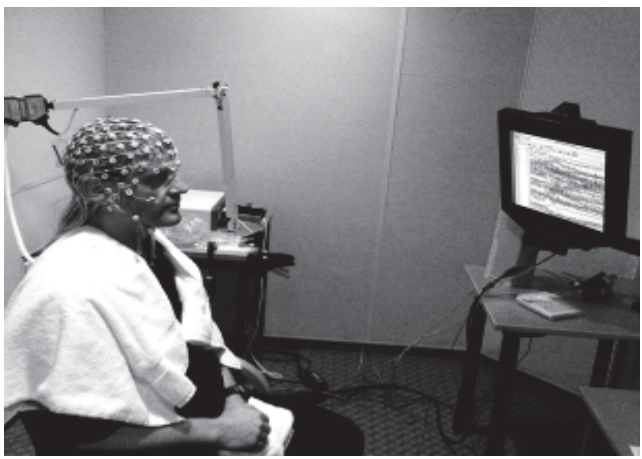

EEG के ज़रिए मस्तिष्क की विद्युतीय क्रिया एवं सक्रीयता की जाँच।

प्रयोगों से यह पता चला कि सतर्कता का स्तर अक्सर उबासी के बाद नहीं, उससे पहले बढ़ जाता है और सतर्कता के अन्य सम्भावित कारण भी पाए गए। तो यह परिकल्पना भी बहुत सटीक साबित नहीं हुई।

कान की सुरक्षा

कुछ शोधकर्ताओं द्वारा यह सुझाया गया है कि उबासी की प्रक्रिया में मध्य-कर्ण के अन्दर एवं बाहर वायु के दबाव को बराबर रखने की क्षमता होती है। इससे वायु में विभिन्न तीव्रता की तरंगों से होने वाली तकलीफ से कान बच सकते हैं। इस परिकल्पना के अनुसार एक तरह से यह कहा जा सकता है कि उबासी कान को बचाने का एक तरीका है। हालाँकि इस परिकल्पना की पुष्टि हेतु अब तक किसी भी प्रकार के व्यवस्थित अध्ययन नहीं हुए हैं।

दिमाग का तापमान

वर्तमान में उबासी आने की सबसे चर्चित व्याख्या दिमाग के तापमान को नियंत्रित करने की परिकल्पना के रूप में दी जा रही है। वैसे तो यह बात 50 वर्ष पूर्व सुझाई गई थी परन्तु इसके प्रायोगिक प्रमाण पिछले सात सालों से एण्ड्रू गैलप के प्रयोगों से मिले हैं। उन्होंने इन प्रयोगों में मस्तिष्क पर ठण्डे पैक का प्रयोग करके अथवा तेज़ी से साँस लेने से किसी को देखकर आने वाली उबासियों की संख्या का कम होना दर्शाया (चूँकि यह माना

जाता है कि मनुष्यों में किसी को उबासी लेता देखने पर भी उबासी आती है)। जबकि समान प्रायोगिक परिस्थिति में गर्म पैक इस्तेमाल करने पर उबासी की संख्या बढ़ने के परिणाम मिले हैं। दिमाग की ओर जब फेफड़ों से और शरीर के सिरों से अपेक्षाकृत कम तापमान वाला खून बहता है, तो दिमाग का तापमान भी कम हो जाता है। शोध से हमें पता है कि जब मनुष्य उबासी लेते हैं दिमाग की ओर खून कुछ ज़्यादा बहता है। इसलिए, गर्म पैक इस्तेमाल करने पर उबासी की संख्या बढ़ने के परिणाम ठीक ही लगते हैं।

मनुष्यों पर किए गए प्रयोगों के अलावा गैलप ने कुछ प्रयोग अन्य जानवरों पर भी किए हैं। चूहों और तोते पर उन्होंने कुछ इसी किस्म के शोध अध्ययन किए। इतने सारे पक्षियों में तोते को चुनने का एक कारण था

कि ये ऑस्ट्रेलिया में खुले में रहते हैं जहाँ तापमान में काफी उतार-चढ़ाव होते हैं। प्रयोग में कुल बीस तोतों को लिया गया जिन्हें एक नियंत्रित ताप कक्ष में रखा। इस कक्ष के तापमान को 20 से 40 डिग्री सेल्सियस के बीच बदला जा सकता था। गैलप ने कक्ष के तापमान को बदलते हुए तोतों में उबासी की आवृति को मॉनिटर किया। उन्होंने पाया कि 22 डिग्री तापमान पर तोते औसतन एक निश्चित समय-अन्तराल में एक बार उबासी लेते थे, वहीं 34 डिग्री सेल्सियस पर वे उसी समय अन्तराल में औसतन दो बार उबासी लेते थे। मगर जब उन्हें 22 डिग्री से 34 डिग्री तक तेज़ी से बदलते तापमान की स्थिति में रखा गया तो उसी समय-अन्तराल में वे चार बार की दर से उबासियाँ लेने लगे। इससे गैलप एवं अन्य शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि उबासी लेना शरीर के तापमान के नियंत्रण से जुड़ा है।

फिर गैलप और उनके साथियों ने उबासी का सीधे दिमाग के तापमान पर असर देखा। इस प्रयोग में उन्होंने चूहों का इस्तेमाल किया। उन्होंने कुछ चूहों के दिमाग में तापमापी लगाए और उबासी के पहले, उसके दौरान और उबासी के बाद दिमाग के तापमान को मापा। उन्होंने पाया कि दिमाग का तापमान जब बढ़ता है तो चूहे उबासी लेते हैं। उन्होंने यह भी पाया कि उबासी और अंगड़ाई लेने के बाद इन चूहों के दिमाग का तापमान पहले से कम हो जाता है।

गैलप के अनुसार, दिमाग कम्प्यूटर की तरह तभी सबसे बढ़िया काम करता है जब ठण्डा होता है, और शारीरिक अनुकूलन कुछ इस तरह विकसित हुआ है कि दिमाग को अधिकतम ठण्डा रखा जा सके।

गैलप द्वारा मनुष्यों, चूहों और तोते पर किए गए अध्ययन ये दर्शाने में तो सफल हुए कि उबासी की भूमिका दिमाग को ठण्डा रखने में है मगर उनके प्रयोगों से इस बात की व्याख्या नहीं होती कि क्यों एक को देखकर दूसरे को उबासी आने लगती है। वैसे गौरतलब है कि यूनानी दार्शनिक हिप्पोक्रेटस का मानना था कि उबासी बुखार कम करने के लिए शरीर द्वारा अपनाया गया एक तरीका है।

उबासी की संक्रामकता

कुछ परिकल्पनाएँ जैव-विकास में उबासी की महत्ता पर टिकी हैं जिनके अनुसार शुरुआती दौर में उबासी का प्रयोग एक सामाजिक संकेत के रूप में, चल रही गतिविधि को बदलकर दूसरी गतिविधि में जाने के लिए किया जाता था। यह परिकल्पना किसी को देखकर उबासी आने की घटना का विश्लेषण इस तरह करती है कि जैविक विकास के क्रम में उबासी लेना एक सार्थक सामूहिक क्रिया थी (शायद सामूहिक रूप से किसी क्रिया को शुरू करने का सन्देश, या सामाजिक संवाद में दुश्मन को डराने वगैरह के लिए)।

देखा-देखी सबको उबासी

कई जानवर उबासी लेते हैं - शेर-बिल्ली, कुत्ते-भेड़िए, बन्दर-वानर, साँप, मछली, चूहे, घोड़े, तोते, पेंग्विन, उल्लू आदि। और मनुष्यों की तरह सामाजिक समूहों में रहने वाले जानवरों में किसी को उबासी लेते हुए देखकर अन्य को उबासी आ जाती है। इनमें चिम्पैन्ज़ी, बॉनबो और तोते शामिल हैं। लेकिन क्या एक प्रजाति के सदस्य को उबासी लेते हुए देखकर दूसरी प्रजाति का जानवर उबासी लेने लगता है?

कुत्ते हमसे काफी हमदर्दी रखते हैं - हमारे इशारों, भावनाओं और मनोदशा को समझने में काफी माहिर हैं। कई पालतू कुत्ते मनुष्य के साथी होते हैं और यह कहना गलत न होगा कि ऐसे कुत्तों को अपने मालिकों से काफी हमदर्दी होती है। क्या इसका मतलब यह है कि कुत्ते अपने मालिकों को देखकर उबासी लेते हैं? शोध से यही पता चला है कि कुत्ते अपने मालिक जैसे मनुष्यों को उबासी लेते देख खुद उबासी लेने लगते हैं। तो उबासी एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में भी फैल सकती है।

इसकी ज़रूरत कालान्तर में खत्म हो गई पर यह आदत बनी रही और इसी कारण किसी को उबासी लेता देखने पर दूसरे व्यक्ति को भी उबासी आ जाती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि कुछ लोगों को किसी को उबासी लेते देख तुरन्त ही उबासी आ जाती है जबकि कुछ के साथ ऐसा कम होता है। ऐसा क्यों? इसके पीछे छिपे कारणों को जानने की मंशा से किए गए अध्ययन इस ओर इशारा करते हैं कि अधिक सहानुभूति स्तर वाले लोगों की तुलना में कम सहानुभूति स्तर वाले लोगों को उबासी लेते देखने पर उबासी जल्दी से नहीं आती। इन अध्ययनों में पहले यह पता किया जाता है कि व्यक्ति-विशेष में अन्य लोगों के प्रति हमदर्दी का स्तर क्या है। यह पता करने के लिए उनसे एक प्रश्नावली भरवाई जाती है और उनके उत्तरों के आधार पर हमदर्दी का स्तर तय किया जाता है। हालाँकि कुछ मनोवैज्ञानिक कुछ अन्य परीक्षणों की सहायता से हमदर्दी के स्तर जानने की कोशिश करते हैं परन्तु इन नतीजों पर दृढ़ता से कुछ कह पाना मुश्किल है।

आखिर उबासी क्यों आती है?

1986 में रॉबर्ट प्रॉविन द्वारा उबासी पर अध्ययन शुरू किए गए, लगभग ढाई दशक के दौरान इस दिशा में और भी कई अध्ययन हुए। इनमें प्रमुख रूप से उबासी को ऑक्सीजन की कमी की आपूर्ती करने हेतु, कान के पर्दे को दबाव से बचाने की ज़रूरत के लिए, जैव-विकास की प्रक्रिया में बनी एक आदत की तरह या मस्तिष्क के

तापमान को सामान्य बनाए रखने के लिए पड़ने वाली एक ज़रूरत के रूप में समझने-समझाने की कोशिश की गई लेकिन अब तक किए गए सभी अध्ययन सम्पूर्ण रूप से उबासी की प्रक्रिया की व्याख्या नहीं कर पाए हैं।

उबासी को समझने के लिए प्रस्तावित समस्त मॉडल एवं परिकल्पनाएँ विभिन्न घटनाओं के अवलोकनों पर आधारित हैं, जिसके चलते कुछ प्रत्यक्ष रूप से प्रकट न हो सकने वाले तथ्यों के छूट जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। सम्भव है कि तंत्रिकीय एवं उपापचयी प्रक्रियाओं की जाँच-पड़ताल उबासी को समझने में नए आयामों को खोल सकें। इसलिए ऐसा लगता है कि उबासी की प्रक्रिया को सम्पूर्णता में समझने के लिए उसके व्यावहारिक, शारीरिक एवं सामाजिक पहलूओं को सम्मिलित करते हुए व्यवस्थित अध्ययन किए जाने की ज़रूरत है।

निशी खण्डेलवाल: पिछले पाँच वर्षों से दिगन्तर में असिस्टेंट फैलो के पद पर काम कर रही हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में विभिन्न मुद्दों पर काम का अनुभव रहा है।

एकलव्य द्वारा आयोजित विज्ञान कार्यशाला (जून 2014) के दौरान प्रतिभागियों के एक समूह ने 'उबासी क्यों आती है?' - इस सवाल पर खोजबीन व चर्चा की। इस लेख का प्रारम्भिक आधार समूह द्वारा किया गया कार्य है। निशी भी इस समूह में शामिल थीं।

शिक्षकों की कलम से

विगत कुछ अंकों से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार दो अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, आपसे एक छोटी-सी अपेक्षा होगी कि आप अपने अनुभवों को भी हमारे पास ज़रूर भेजिए।

1. नहीं दिए जाते रचनात्मकता ..... मनोहर चमोली
2. पत्तियाँ पानी बाहर फेंकती हैं ..... अलका तिवारी

नहीं दिए जाते रचनात्मकता के अवसर

मनोहर चमोली

भाषा शिक्षण के दौरान अक्सर देखने में आता है कि अधिकतर छात्र पाठ पढ़ लेते हैं। पाठोपरान्त प्रश्न-अभ्यास कर लेते हैं। गद्य-पद्य आधारित किताबी सन्दर्भ भी लिख लेते हैं, लेकिन अधिकतर छात्र पढ़ाए हुए को अपने शब्दों में बोलने और कुछ मन से लिखने में काफी कमज़ोर पाए जाते हैं।

माध्यमिक स्तर पर पढ़ाते हुए मुझे नौ साल हो गए हैं। मैं हिन्दी और संस्कृत पढ़ाता रहा हूँ। हमेशा उत्तीर्ण छात्रों का प्रतिशत लगभग सौ के आसपास ही रहा है। यह खुद पर इतराने का ख्याल अच्छा है। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि कक्षा में पाठ्य पुस्तक पढ़ाने और अभ्यास कराने मात्र से छात्रों में मौलिक लेखन विकसित नहीं होता। कुछ प्रार्थना-पत्र और कुछ निबन्ध का अभ्यास करा देने भर से रचनात्मक अभिव्यक्ति का कौशल विकसित नहीं होता।

अधिकतर शिक्षक परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के हिसाब से पाठ और प्रश्नों के अभ्यास कराते हैं। और ऐसे में जब कोई सवाल पाठ्य-पुस्तक में दिए गए अभ्यास प्रश्नों से थोड़ा भी इतर आ जाता है तो शिक्षक साफ कहते हुए पाए जाते हैं, "सवाल कोर्स से बाहर का था।"

इस बात की पुष्टि तब और हुई जब मुझे माध्यमिक बोर्ड (कक्षा-10)

की उत्तर-पुस्तिका जाँचने का मौका मिला। रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक सवाल आया था, 'सरकारी स्कूलों में घटती छात्र संख्या के कारणों पर लेख लिखिए।'

कुछ कॉपियाँ जाँचने के बाद अचानक मेरा ध्यान इस बात पर गया कि अधिकतर छात्रों ने इस सवाल को छोड़ दिया था। मुझे याद है कि लगभग दस फीसदी छात्रों ने ही इस सवाल पर मशक्कत की थी। जिन्होंने की भी तो उनमें से अधिकतर छात्रों ने इसे किसी प्रार्थना-पत्र या निबन्ध शैली में लिख दिया था।

ऐसा क्यों हुआ?

कुछ गिने-चुने प्रार्थना-पत्रों और निबन्धों का अभ्यास कराने के बाद यह मान लिया गया होगा कि अभ्यास कराए गए निबन्धों और प्रार्थना-पत्रों में से कोई-न-कोई तो परीक्षा में आ ही जाएगा और छात्र कर ही लेंगे।

अंकों का वितरण

वैसे भी अगर हम नज़र दौड़ाएँ कि हमारी स्कूली व्यवस्था इस मौलिक-रचनात्मक लेखन और अभिव्यक्ति को कितना महत्व देती है तो इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हिन्दी के सौ अंकों के प्रश्न पत्र में रचनात्मक लेखन के लिए अधिकतम 14 अंक आरक्षित किए जाते हैं जिसमें एक प्रार्थना-पत्र और एक निबन्ध भी होता है। सोचिए अगर यह हिस्सा छूट भी जाए तो छात्रों के पास 86 प्रतिशत हिस्सा तो है ही जिसके ज़रिए वे अच्छे अंक हासिल कर सकते हैं।

वहीं दूसरी ओर रचनात्मक लेखन और अभिव्यक्ति का अभ्यास या उसे विकसित करने के लिए साल भर कुछ खास ठोस, नियमित गतिविधियाँ होती ही नहीं। गद्य-पद्य आधारित समस्त पाठों के अभ्यासों में भी रचनात्मक कौशल आधारित सवाल बेहद न्यून हैं।

शिक्षकों एवं मूल्यांकन-कर्ताओं में आज भी ऐसे शिक्षक ही अधिक हैं जो हर सवाल का एक ही उत्तर चाहते हैं। यही कारण है कि इस तरह के सवालों के प्रति यदि कोई छात्र कक्षा में संवाद करने की कोशिश भी करता है तो उसे प्रोत्साहित ही नहीं किया जाता।

व्यक्तिगत प्रयास

मैंने अपने विद्यालय में मौलिक लेखन के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया। इसे लेकर छात्रों में जमकर उत्साह रहा और उन्होंने इसमें बढ़-चढ़कर भाग भी लिया। मैंने कोशिश की कि मैं किसी भी छात्र के लेखन में कोई मीन-मेख न निकालूँ, व्याकरण दोष न खोजता रहूँ। बस एक ध्येय रहा कि छात्र जो कुछ सोचते हैं, जैसा सोचते हैं, बस उसे लिखकर अभिव्यक्त करें।

यह तो मैं जानता था कि कक्षा छह से दस तक के मेरे छात्र मौलिक लेखन में सामान्य भी नहीं हैं। उन्हें

पढ़ाई गई किताब के इतर कुछ लिखने को दे दिया जाए तो वे सकपका जाते हैं। ऐसे में पिछले दो शैक्षणिक सत्रों के आरम्भिक दिनों में कुछ हटकर काम करने का मन बनाया। मसलन, किताब एक ओर रखकर मैं उनसे आधा पेज, एक पेज या जितना उनका मन करे लिखने को दिया करता था। लिखने के बिन्दु कुछ इस तरह के होते थे।

- *यदि चॉकलेट और जलेबियाँ पेड़ पर फलों की तरह उगने लगें तो क्या होगा?*
- *स्कूल केवल रविवार को ही लगे तो कैसा रहेगा?*
- *यदि स्कूल में आधा दिन पढ़ाई हो और आधा दिन खेल तो आप कौन-कौन से खेल खेलोगे और क्यों?*
- *अपने घर से स्कूल तक आते-आते आपको क्या-क्या दिखाई देता है?*
- *यदि तुम्हें मछलियों की तरह तैरना और पानी में रहना आ जाए तो क्या करोगे?*

मेरे छात्रों ने इस तरह के सवालों के जवाब देना अधिक पसन्द किया। उन्होंने केवल जवाब ही नहीं दिए बल्कि अपनी कल्पना और सोच को विस्तार दिया। ऐसा वे पाठ को पढ़ते और प्रश्न-अभ्यास करते हुए नहीं कर पाते थे। इसके अलावा मैंने पाया कि छात्र जैसा सोचते थे, वैसा लिखने की कोशिश भी कर रहे थे।

एक दिन मैंने सभी छात्रों को गृह-कार्य दिया। लेखन का बिन्दु था, 'ऐसे काम जिन्हें आप करना चाहते हों, लेकिन कर नहीं पाते।'

मुझे यह भी आकलन करना था कि कहीं छात्र मिलकर एक जैसा तो नहीं लिख कर लाएँगे। मैं गलत था। प्रत्येक बच्चे ने अपने मन की बातें व्यक्त कीं।

- *मैं घास काटना नहीं जानती।*
- *मैं दूध दुहना जानना चाहता हूँ।*

- *मैं तैरना सीखना चाहता हूँ।*
- *मैं शीशे में देखे बिना सिर के बालों की सीधी माँग निकालना सीखना चाहता हूँ।*
- *मुझे हल लगाना नहीं आता।*
- *मैं सीटी बजाना सीखना चाहती हूँ।*
- *मुझे टीवी के कलर कम-ज़्यादा करना नहीं आता।*
- *मैं खम्बे पर नहीं चढ़ पाता।*
- *मुझे आटा गूँधना सीखना है।*
- *मुझे गोल रोटी बनाना सीखना है।*
- *मुझे सही से चाय बनाना नहीं आता।*

ये सब काम उनके घर-गाँव से जुड़े हुए थे। इन कामों में उनकी पढ़ाई-केरियर और सूचना-तकनीक से जुड़े कोई काम नहीं थे। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि बच्चे अपने घर-परिवार से जुड़े छोटे-छोटे काम-धन्धों पर इतनी गहन नज़र रखते हैं। न सिर्फ इन्हें महत्वपूर्ण मानते हैं बल्कि इन्हें करने में दिलचस्पी भी लेते हैं।

नवीन सत्र के आरम्भ में तो मैं यह करता रहा, लेकिन जैसे-जैसे सत्र आगे बढ़ता गया मैं भी कोर्स को पूरा करने की जुगत में लग गया। सोचा तो था कि पहले कोर्स पूरा करा दूँगा फिर बचे समय में रचनात्मक गतिविधियाँ कराता रहूँगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। परन्तु मैंने इतना ज़रूर किया है कि पाठ के आधार पर पाठ्य-पुस्तक से इतर कुछ मौखिक सवाल ज़रूर पूछता हूँ जिनके उत्तर विविध हों। एक उदाहरण देना चाहूँगा। कक्षा-9 में प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' कहानी पाठ के रूप में है। पाठ पढ़ा लेने और प्रश्न अभ्यास करा लेने के बाद मैं छात्रों से पाठ्य-पुस्तक से इतर चर्चा के लिए कुछ प्रश्न करना चाहूँगा:

- *यदि काँजी हाउस मनुष्यों के लिए भी बने होते तो आप कैसे मनुष्यों को उनमें बन्द करना चाहते?*
- *हीरा और मोती में से आपको कौन अधिक प्रिय लगा और क्यों?*
- *क्या हीरा और मोती का झूरी के घर से भागना ठीक था? यदि हाँ, तो क्यों?*
- *पशुओं को बाँधकर रखना क्या ठीक है? यदि नहीं तो पशुओं को हम पालते क्यों हैं?*

उपरोक्त चार प्रश्न, अभ्यास प्रश्नों में से नहीं हैं। ये ऐसे प्रश्न हैं जिनके जवाब विविधता से भरे हो सकते हैं। ये प्रश्न छात्रों की रचनात्मकता और चिन्तनशीलता को बढ़ाते हैं। ऐसा करना हर पाठ में सम्भव नहीं है, लेकिन असम्भव भी नहीं। यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह पढ़ाए गए पाठ से इस तरह की खुली चर्चा कैसे करवाएँ। बस इतना ध्यान रखना ज़रूरी होगा कि हर छात्र की राय का सम्मान हो। किसी के जवाब को गलत न ठहराया जाए। यह तभी होगा जब

सवाल विविधता से भरे उत्तर की सम्भावना रखता हो।

छःमाही और सालाना परीक्षाओं का अप्रत्यक्ष मानसिक दबाव शिक्षकों पर पड़ता ही है और वे फिर से परम्परागत ढर्रे पर शिक्षण कार्य करने लगते हैं। परम्परागत शिक्षण छात्रों को परीक्षा में अच्छे अंक तो दिला देता है लेकिन छात्र न तो अच्छे वक्ता बन पाते हैं, न ही कभी कोई प्रभावशाली लेख लिख पाते हैं। वे अपनी बात ठीक से व्यक्त नहीं कर पाते और हाज़िरजवाब तो बन ही नहीं पाते।

मुझे लगता है कि हम शिक्षकों को पूरे सत्र में छात्रों को ऐसे भरपूर अवसर उपलब्ध करवाने चाहिए जिनसे वे अपने मन की बात कह सकें, लिख सकें। यदि हम ऐसा कर सकें तो यही छात्रों के प्रति हम शिक्षकों का सच्चा कर्तव्य माना जा सकेगा।

मनोहर चमोली 'मनु': शिक्षा विभाग, विद्यालयी शिक्षा, उत्तराखण्ड में भाषा शिक्षक हैं। कहानियाँ लिखते हैं। कई कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य के अनेक राजकीय पुरस्कारों से सम्मानित। पौड़ी (गढ़वाल) में निवास।
सभी चित्रः तनुश्रीः आई.डी.सी., आई.आई.टी. बॉम्बे से एनीमेशन में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से एनीमेशन फिल्में बनाती हैं और चित्रकारी करती हैं।

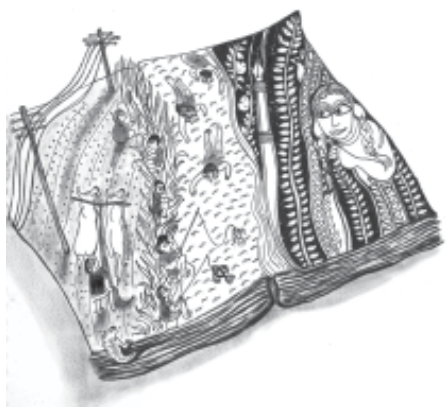

पत्तियाँ पानी बाहर फेंकती हैं

अलका तिवारी

राजस्थान के टोंक ज़िले में चल रहे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के स्कूल में कक्षा-4 के बच्चों के साथ पर्यावरण अध्ययन पर जारी कार्य का अवलोकन मैं यहाँ पर साझा कर रही हूँ। इस स्कूल में टोंक ज़िले के बम्बोर गाँव के वंचित वर्ग के बच्चे आते हैं।

जब पर्यावरण अध्ययन के शिक्षण की बात आती है तो बहुत ही स्वाभाविक तौर पर हम सभी स्वीकार करते हैं कि बच्चों के साथ चर्चा करना पर्यावरण अध्ययन की विषयवस्तु के बारे में समझ बनाने की एक बेहतर प्रक्रिया है। पर जब वंचित वर्ग या ग्रामीण परिवेश के बच्चों की बात आती है तो आम तौर पर यह मान लिया जाता है कि इन बच्चों के पास शायद कहने के लिए ज़्यादा कुछ होता ही नहीं, इसी कारण ये बच्चे शिक्षक के साथ संवाद की प्रक्रिया का हिस्सा बन ही नहीं पाते।

मुझे लगता है हमें अपनी इस मान्यता पर संवेदनशीलता के साथ

फिर से गौर करना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि बच्चों के बीच संवाद की बेहतर स्थितियाँ स्थापित करने की दिशा में एक शिक्षक क्या योगदान दे पाता है जिससे इन बच्चों को सहज अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर मिल पाएँ। उनके विचार को सही या गलत ठहराने की बजाए उन्हें धैर्य-पूर्वक सुना जाए ताकि बच्चे ये महसूस कर पाएँ कि उनकी बात भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी बाकी सबकी। इससे उन्हें तर्क करने व कल्पना करने के अवसर मिल पाएँगे और वे अपने विचारों के माध्यम से कुछ नया सृजित करने की ओर बढ़ पाएँगे।

इस सन्दर्भ में कक्षा-4 के बच्चों के साथ पत्तियों पर किए काम का अनुभव मेरे लिए कई मायनों में विशेष रहा जिसे यहाँ साझा कर रही हूँ।

योजना

एक दिन आपसी बातचीत के दौरान शिक्षक के साथ तय किया कि कक्षा-4 के बच्चों के साथ पत्तियों को लेकर कुछ बातचीत शुरू की जाए, क्योंकि ग्रामीण परिवेश में रहने के कारण खेत और फसलें इन सभी बच्चों के जीवन का अहम हिस्सा हैं। और पेड़-पौधों से जान-पहचान पाठ्यक्रम का भी हिस्सा है। ऐसा अहसास था कि इस विषय पर बच्चों के पास काफी सारे विचार हो सकते हैं और बच्चों के पूर्वानुभव से जाना जाए कि आखिर वे पत्तियों के बारे में किस तरह से सोचते हैं। जब बच्चों के साथ बातचीत शुरू हुई तो पता ही नहीं चला और योजना का स्वरूप स्वतः ही बनता चला गया। तब समझ में आया कि सीखने की प्रक्रिया में बच्चों के अनुभव कैसे मददगार हो सकते हैं और बच्चों के साथ इस तरह का खुला संवाद सीखने की प्रक्रिया को वाकई सहज एवं जीवन्त बना सकता है!

पहला दिन

बच्चों से 'पौधों में पत्तियों की भूमिका' पर चर्चा की शुरुआत इस सवाल के साथ की गई - आखिर पत्तियाँ करती क्या हैं? बच्चों की

प्रतिक्रियाएँ कुछ इस तरह से आईं-

- पत्ती हरी होती है।
- पत्तियों को जानवर खाते हैं।
- कुछ पत्तियाँ जैसे प्याज़, मेथी की सब्ज़ी बनाकर खाते हैं, तुलसी भी खाते हैं।
- पत्तियों से छाया रहती है।
- नीम की पत्तियों को उबाल कर नहाने से खुजली ठीक हो जाती है।
- और इन्हें जलाकर धुआँ करने से मच्छर नहीं आते।

गर्मियों का मौसम और तेज़ धूप का ध्यान आते ही कुछ बच्चों ने प्रतिक्रिया दी कि - पत्तियाँ तो पानी को बाहर फेंकने का काम करती हैं!

जब शिक्षक ने पूछा कि, "ये बात कितनी ठीक है, आखिर इसका पता कैसे लगाया जा सकता है?" तो इस पर कक्षा में एकदम खामोशी-सी छा गई। थोड़ी देर ज़रूर लगी पर पत्तियों की इस कारीगरी के बारे में जानने के लिए कुछ बच्चों ने एक क्रियाकलाप सुझाया (शायद उन्होंने पहले कहीं इस प्रयोग के बारे में पढ़ा-सुना हो) - किसी छोटे पौधे या टहनी पर पारदर्शी पॉलिथीन बाँध दी जाए। इससे पत्ती से जो पानी निकलेगा वह थैली के अन्दर ही इकट्ठा हो जाएगा।

कुछ बच्चों का विचार था कि यदि इस पौधे को पानी भी दे दिया जाए तो शायद कुछ अलग होगा।

इस पर कुछ बच्चों ने सवाल किया कि फिर सही बात का पता कैसे चलेगा कि पानी डालने से क्या हुआ है, और नहीं डालते तो क्या होता। आखिर में सभी ने मिलकर तय किया कि हमें दो पौधों पर पॉलिथीन बाँधनी चाहिए जिससे पूरी बात ठीक से पता चल पाए। साथ ही दोनों पौधे एक जैसे होने चाहिए। क्योंकि अलग-अलग तरह के पौधे होंगे तो उनकी पत्तियाँ छोटी-बड़ी होंगी, और वे कम या ज़्यादा पानी छोड़ सकती हैं।

तो जैसे तय हुआ था फाईकस (यानी गूलर, अंजीर समूह) के दो अलग-अलग पौधों पर पॉलिथीन बाँध दी गई। और इनमें से एक पौधे में 5-6 मग्गे पानी भी डाला गया। कुछ बच्चों का कहना था कि जिसमें पानी डाला गया है उस पौधे की पत्तियाँ बहुत ज़्यादा पानी छोड़ेंगी। पॉलिथीन बाँधने के बाद बच्चों द्वारा 10-15 मिनिट अवलोकन किया गया। बच्चों ने इस प्रक्रिया के दौरान कुछ इस तरह की प्रतिक्रियाएँ दीं -

- पौधे पर बँधी पॉलिथीन के अन्दर थोड़ी देर बाद ही भाप-सी जमा होने लगी है, और छोटी-छोटी बूँदें भी दिखाई देने लगी हैं।
- दूसरी पॉलिथीन को बाद में बाँधा गया है, इसलिए बूँदें आने में थोड़ा ज़्यादा समय लगा।
- पहले बाँधी गई पॉलिथीन के अन्दर ज़्यादा बूँदें आईं, क्योंकि पौधे का ज़्यादा हिस्सा पॉलिथीन के अन्दर था।

उस दिन काम को यहीं विराम दिया गया।

बच्चों का सवाल था - आखिर पानी कहाँ से आया होगा? इस सवाल को बच्चों के बीच ही छोड़ा गया जिनके कुछ कथन और कयास इस प्रकार थेः

- पानी पत्तियों से ही आया है।
- जड़ें जो पानी सोखती हैं, उसे पत्तियों द्वारा बाहर फेंका जाता है।
- अगर पत्तियाँ ऐसा नहीं करेंगी तो जड़ें सड़ जाएँगी।
- दोनों थैलियों में पाए गए पानी की मात्रा में अन्तर को लेकर बच्चों का कहना था कि एक पौधा बड़ा था, दूसरा छोटा – शायद इसीलिए ऐसा हुआ है।
- एक पौधे के पास कुछ अन्य पौधे लगे हुए थे। शायद उनकी जड़ों ने उस पौधे के हिस्से के (पौधे में डाले गए) पानी को सोख लिया! इस कारण पानी की कम मात्रा इकट्ठी हुई।

दूसरा दिन

बातचीत की शुरुआत पिछले दिन के प्रयोग पर बच्चों की प्रतिक्रियाओं से हुई -

- कुछ बच्चों का कहना था जिस पौधे में पानी डाला, उसकी थैली में गन्दा पानी इकट्ठा हुआ।
- कुछ का कहना था कि पौधे की पत्तियों से ही गन्दा पानी आया है।
- कुछ अन्य बच्चों का कहना था कि हमने ध्यान नहीं रखा, काम में ली गई थैली में आटा लगा हुआ था, इसलिए पानी गन्दा हो गया।
- दूसरी पॉलिथीन में छोटी बूँदें आईं, पानी भी कम इकट्ठा हुआ। ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि इस पॉलिथीन में पत्तियाँ कम थीं।
- जिस पौधे में पानी नहीं डाला था, उसमें ज़्यादा पानी आया क्योंकि इसमें पत्तियों की संख्या ज़्यादा थी।

इस चर्चा के बाद बच्चों का कहना था कि शायद हम प्रयोग ठीक तरह से नहीं कर पाए। इस प्रक्रिया को और ठीक से समझने के लिए हमें यह प्रयोग दोहराना चाहिए और इस बार हम इन बातों का ध्यान रखेंगे –

- पॉलिथीन बराबर आकार की हों। और बिलकुल साफ हों, फटी न हों।
- हर बाँधी जाने वाली पॉलिथीन के अन्दर पत्तियों की संख्या भी बराबर हो।
- बच्चों का सुझाव था कि हम एक ही पौधे की अलग-अलग टहनियाँ भी काम में ले सकते हैं।
- जो पौधे हम चुन रहे हैं, वे एक-दूसरे से दूर-दूर हों, ताकि कोई अन्य पौधा किसी और पौधे के हिस्से का पानी न सोख ले।
- पॉलिथीन को टाइट बाँधा जाए ताकि इकट्ठा होने वाला पानी बिलकुल

भी न बह सके।

फिर एक और उलझन आई, जब शिक्षक ने पूछा कि, "यदि पौधा छाया में हो तो क्या होगा?" और "पौधा धूप में ही हो पर अगर बाँधे गए हिस्से पर एक भी पत्ती नहीं हो तो क्या होगा?"

इस पर कुछ बच्चों का विचार था कि दोनों ही स्थितियों में पानी नहीं इकट्ठा होगा पर सभी बच्चे इस बात पर सहमत नहीं थे। इसलिए आखिरकार यह तय किया गया कि एक ही जैसे 4 पौधों को चुनेंगे जिनमें से 2 धूप में व एक छाया में लगा हो। एक पौधा ऐसा लेंगे जिसका केवल तने वाला हिस्सा ही बाँधेंगे, जिस पर एक भी पत्ती न हो। योजनानुसार बच्चों ने मिलकर प्रयोग सैट करते हुए अवलोकन किए।

बच्चों के निष्कर्ष

दोबारा प्रयोग करने के बाद दोनों दिन के कार्य को लेकर बच्चों के साथ सामूहिक रूप से चर्चा की गई। पहले व दूसरे दिन के क्रियाकलाप को ध्यान में रखते हुए बच्चों ने अपने विचारों को इस तरह साझा किया –

- पौधे में पानी डालने या न डालने से पॉलिथीन में इकट्ठे होने वाले पानी की मात्रा पर कोई फर्क नहीं पड़ता।
- अगर पत्तियों की संख्या बराबर हो तो निकलने वाले पानी की मात्रा भी बराबर होगी।
- बिना पत्ती वाले पौधे में पानी की

एक-दो नन्ही बूँदें दिखीं पर ध्यान से देखा तो पता चला कि तने पर अंकुर फूट रहे थे। ये बूँदें उन्हीं अंकुरों पर दिखने वाली नन्ही पत्तियों की वजह से हो सकती हैं। यानी पानी तो शायद केवल पत्तियाँ ही छोड़ती हैं, तने या छाल से पानी बाहर नहीं आया है।

- छाया में रखे पौधे पर बाँधी गई पॉलिथीन में बिलकुल पानी दिखाई नहीं दिया।
- कुछ बच्चों ने कहा कि पानी जड़ों से तने तक आता है। तने से पत्तियों में आता है और फिर पत्तियों द्वारा बाहर निकल जाता है।

इस चर्चा के साथ इस कार्य को यहीं पर विराम दिया गया।

अनुभव पर चिन्तन

इस पूरे काम के दौरान मैंने काफी हद तक महसूस किया है कि बच्चे अपने आस-पास की चीज़ों पर काफी बारीकी से गौर करते हैं, साथ ही वे उतनी ही सतर्कता के साथ उन चीज़ों के बारे में सोच भी रहे होते हैं। ये अलग बात है कि (हम बड़ों की तुलना में) बच्चे अपनी दुनिया के दायरे को तेज़ी से विस्तार देने की प्रक्रिया में आगे बढ़ रहे होते हैं। अक्सर उनकी बातों को बड़ों द्वारा उतनी संजीदगी के साथ नहीं लिया जाता। पर यदि बच्चों को एक स्वस्थ संवाद की प्रक्रिया से गुज़रने का अवसर मिलता है तो उन्हें अपने अवलोकनों को और ध्यानपूर्वक एवं व्यवस्थित रूप से दर्ज करने की आवश्यकता महसूस होती है। बार-बार के अवलोकन और उन पर विमर्श कर पाने का मंच उनकी सोच-विचार की प्रक्रिया को उचित दिशा की ओर ले जाने के साथ उनमें कुछ और नया सृजित कर पाने की क्षमता को जन्म देता है।

इस पूरी प्रक्रिया में कहीं भी ऐसी कोशिश नहीं की गई कि बच्चों को वाष्पोत्सर्जन के बारे में बता दिया जाए। इसका उद्देश्य केवल बच्चों के साथ एक सार्थक संवाद स्थापित करना था जो शिक्षक के धैर्य और खुलेपन के कारण सम्भव हो सका। पर उम्मीद है कि ये बातचीत भविष्य में बच्चों को वाष्पोत्सर्जन की अवधारणा पर समझ बनाने में भूमिका निभाएगी। पूरे संवाद व कार्य-प्रक्रिया से गुज़रने के पश्चात् बच्चे स्वीकार कर रहे थे कि सिर्फ एक बार कुछ करने से हमें सब ठीक-ठीक पता चल जाए, यह बिलकुल ज़रूरी नहीं है। यहाँ बच्चों ने अपने ही एक सवाल के सम्भावित जवाब, अवलोकन

और प्रयोग करते हुए खोजने की कोशिश की। साथ ही समस्या को हल करने के लिए कार्य-प्रक्रिया को बुनने का प्रयास भी किया। अवलोकन करते हुए अपने काम में रही कमियों को चिन्हित कर पाए। इसके लिए नए प्रयोग को गढ़ने के साथ-साथ उन्हें संचालित करके भी देखा। यहाँ बच्चों ने अनुभव, अनुमान से शुरू करके, तर्कपूर्ण ढंग से सोचते हुए बार-बार अवलोकन व विश्लेषण के माध्यम से गुज़रते हुए अपने निष्कर्ष बनाने तक का सफर जिस तरह से तय किया, मेरे लिए यह काफी उत्साहित करने वाला रहा।

ऐसा महसूस होता है कि बच्चे सीखने को भरपूर ढंग से जीते हैं, अगर सहज माहौल दिया जाए जहाँ हर बच्चे को आज़ादी हो अपना मनचाहा सवाल पूछने की और उसके लिए अपने-अपने अनुमानित जवाब बताने की। इससे बच्चों में अपनी बात कहने का आत्मविश्वास भी आता है और वे अन्य सभी को ध्यान से सुनना भी सीख रहे होते हैं। बच्चों की प्रतिक्रियाएँ हमें ये देख पाने में मदद करती हैं कि उन्होंने शिक्षक की बात को किस तरह आत्मसात किया है। अगर हम यह बात पकड़ पाते हैं तो फिर उनके जवाब पर गलत या सही का ठप्पा लगाने की ज़रूरत नहीं रह जाती। पर बतौर एक शिक्षक हम कितना गौर कर पाते हैं इस बात पर कि – आखिर बच्चे क्या कह रहे हैं और यही बात क्यों? काम के दौरान शायद एक शिक्षक की चिन्ता इस बात के लिए ज़्यादा होती है कि बच्चे कितना सीख रहे हैं या फिर क्यों नहीं सीख रहे हैं! पर कैसे सीख रहे हैं इस पर अमूमन ध्यान कम ही जाता है।

बच्चों से बातचीत की प्रक्रिया में अगर खुलापन हो और बच्चों को भी उतनी ही स्वतंत्रता हो जितनी एक शिक्षक को होती है तो चर्चा सीखने की प्रक्रिया में मज़ेदार भूमिका निभा सकती है। पर ऐसी किसी पहल के लिए शिक्षक को ही साहस करना होगा।

अलका तिवारी: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, टोंक (राजस्थान) में कार्यरत हैं। विज्ञान से जुड़े मुद्दों पर अध्ययन व विमर्श में विशेष रुचि।
सभी चित्र: तनुश्री: आई.डी.सी., आई.आई.टी. बॉम्बे से एनीमेशन में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से एनीमेशन फिल्में बनाती हैं और चित्रकारी करती हैं।

अलग-अलग तरीकों से सवाल करने की अहमियत

उदय मैत्रा

ज़्यादातर विद्यार्थियों की पढ़ाई में लगने वाले समय का एक बड़ा हिस्सा परीक्षा में पूछे जाने वाले सवालों के जवाब के लिए खुद को तैयार करने में जाता है। यह तरीका और भी महत्वपूर्ण बन जाता है जब विद्यार्थी प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे आईआईटी प्रवेश-परीक्षा आदि की तैयारी कर रहा हो। इन परिस्थितियों में, व्यस्त विद्यार्थी सभी सम्भव स्रोतों से मिलने वाले प्रश्न बैंकों को खँगालने की कोशिश करते हैं, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उन्होंने किसी एक थीम पर लगभग सभी सवालों व उनके सभी सम्भव रूपों का अपना एक डेटाबेस तैयार कर लिया है। क्या यह समय-खपाऊ अभ्यास विषय की बेहतर समझ बनाने की ओर ले जाता है? सीधा-सा जवाब है, नहीं। सभी सम्भव विविधताओं के बावजूद, एक के बाद एक सवाल के जवाब देना, वास्तव में विद्यार्थियों को गहराई में सोचने में सक्षम नहीं बनाता जो कि विषय को समझने और उस पर महारत हासिल करने के लिए आवश्यक है। प्रतियोगी परीक्षाओं में अच्छे नतीजे लाना तो अनिवार्य है, लेकिन यह भी ज़रूरी है कि विषय को अच्छी तरह से समझा गया हो। यह महज़ सवालों के जवाब देने भर से नहीं हो सकता है। असल में, विद्यार्थियों को जवाब देने की अपेक्षा सवाल अधिक पूछने चाहिए।

यहाँ पर मैं स्टैनफोर्ड युनिवर्सिटी, अमरीका में रसायनशास्त्र के प्रोफेसर रिचर्ड ज़ारे द्वारा हाल ही में दिया गया वक्तव्य प्रस्तुत करना चाहूँगा। उन्होनें कहा था, "सवाल, सीखने और ज्ञान के निर्माण के केन्द्र में है। अब तक विद्यार्थी जवाब देने को सवाल करने से अधिक महत्व देते आए हैं। पर मैं इसके उलट सोचता हूँ। जवाब की तलाश में बढ़ते हुए सवाल ही वह जगह है जहाँ सीखना होता है, न कि जवाब खुद।"

एक और वैज्ञानिक के कथन के अनुसार, "मेरी माँ ने मुझे वैज्ञानिक बनाया वो भी गैर-इरादतन। ब्रुकलिन की हर दूसरी यहूदी माँ स्कूल से आने के बाद बच्चे से पूछती है, 'तो, आज कुछ सीखा?' पर मेरी माँ ऐसा नहीं करती थी! 'इज़ी', वो कहती, 'तुमने आज कोई अच्छा सवाल पूछा?' इसी

अन्तर - अच्छे सवाल पूछना - ने मुझे वैज्ञानिक बनाया।" वैज्ञानिक, और वो भी कैसा वैज्ञानिक? इसिडॉर आइज़ैक राबी, भौतिकी विभाग, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमरीका। और राबी ने 1944 में अणु के केन्द्रक की चुम्बकीय प्रकृति को रिकॉर्ड करने वाली रेज़ोनेंस विधि के लिए भौतिकी का नोबल पुरस्कार जीता। इस तकनीक को आज एन.एम.आर. के नाम से जाना जाता है। रसायन के क्षेत्र में तो इसका महत्वपूर्ण उपयोग है ही और साथ ही, चिकित्सा के क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली MRI में भी इसका इस्तेमाल होता है।

यहाँ संक्षेप में कुछ रणनीतियों की चर्चा करना चाहूँगा जो इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलूरू में अपने कोर्स के दौरान मैं अपनाता रहा हूँ और ये मुझे विद्यार्थियों की रचनात्मक क्षमताओं को परखने में मदद करती रही हैं। इस कोर्स में बदस्तूर मैं होमवर्क नहीं देता। इसकी जगह उनसे हर 2-3 हफ्तों में एक पेज में एक सवाल और उसका सम्भव उत्तर जमा करने को कहता हूँ। सम्भव या प्रत्याशित इसलिए क्योंकि सवाल का जवाब शायद अब तक ज्ञात ही न हो! मेरी शर्त है कि सवाल किसी पाठ्यपुस्तक या स्कूल/कॉलेज/प्रतियोगी परीक्षा से नहीं होना चाहिए। आदर्श रूप में, मैं कहता हूँ, सवाल का जवाब सीधे किताब से न हो और जवाब देते हुए आपको सोचना होगा। सालों बाद विद्यार्थियों ने मुझे बताया कि इस तरह के होमवर्क में उन्हें खूब आनन्द आता था। ये उन्हें किताबें, शोध-पत्र पढ़ने को मजबूर करते और सबसे महत्वपूर्ण, सोचने पर। एक शिक्षक के नज़रिए से इसका एक अतिरिक्त लाभ यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी का सवाल एकदम अलग होता है। और इस तरह एक-दूसरे से होमवर्क कॉपी करने का सवाल ही नहीं उठता!

मैंने परीक्षा प्रश्नपत्र के लिए इसी में एक बदलाव का प्रयास किया। सामान्य पूछे जाने वाले प्रश्नों के साथ प्रायः मैं एक सवाल रखता जिसमें मेरे द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषय से सम्बद्ध एक ड्रॉइंग देता हूँ और उन्हें इस पर दो सवाल लिखने को कहता हूँ, सवाल जो ड्रॉइंग को देखकर पूछे जा सकते हैं (विषय के अनुरूप यह ड्रॉइंग एक प्लॉट या रासायनिक संरचना या फिर फोटोग्राफ हो सकती थी)। यह मुझे विद्यार्थियों की रचनात्मक क्षमताओं को परखने का भी मौका देता है।

एक तीसरी ट्रिक जो मैं अक्सर ही अपनाता हूँ! मैं जवाब सहित एक सवाल देता हूँ, इस सूचना के साथ कि जवाब पूरा सही हो सकता है, आंशिक सही हो सकता है या फिर पूरी तरह गलत! विद्यार्थियों का काम है जवाब का मूल्यांकन करना और उस पर अंक देना। मैं अन्ततः विद्यार्थियों को इस आधार पर अंक देता कि उन्होंने जवाब का मूल्यांकन कितने सही ढंग से किया है। मेरे

विद्यार्थी भी इसे पसन्द करते हैं, क्योंकि यह उन्हें अपने विवेक के रचनात्मक इस्तेमाल का मौका देता है।

मैंने यह महसूस किया कि कई सारी बाधाओं के चलते यह सब स्कूल स्तर पर कर पाना सम्भव नहीं हो सकता।

फिर भी, एक सन्देश जो मैं सभी शिक्षकों तक पहुँचाना चाहता हूँ कि वे अपने विद्यार्थियों को सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करें।

जो शिक्षक एवं विद्यार्थी यह लेख पढ़ रहे हैं, क्या वे साथ दिए गए चित्र-1 को देखते हुए मुझे सवाल लिखकर भेजेंगे?

लेखक से सम्पर्क साधने हेतु maitra@orgchem.iisc.ernet.in पर ईमेल करें।

उदय मैत्रा: इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलोर में ऑर्गेनिक कैमिस्ट्री विभाग के चेयरमैन और प्रोफेसर हैं। उनकी शोध रुचि है - बाइल अम्ल के रसायन।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: अम्बरीष सोनी: 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।
यह लेख 'रेज़ोनेंस' पत्रिका के अंक - जनवरी, 2015 से लिया गया है।

आयदा फिफर की भारत यात्रा का वृत्तान्त

माधव केलकर

इतिहास के अध्ययन में अक्सर कहा जाता है कि किसी काल के समाज, प्रशासन आदि को जानने के स्रोतों में विदेशी नागरिकों के अवलोकन व उनके यात्रा वृत्तान्त भी काफी महत्व रखते हैं। यह बात भारत के इतिहास के लिए भी सही है।

पिछले दिनों मैंने एक सूची बनाने की कोशिश की जिसमें विगत ढाई हज़ार साल में भारत का भ्रमण करने वाले विदेशी यात्रियों के नाम, कहाँ से आए, कब आए, यात्रा का उद्देश्य, यात्री कौन थे (यानी राजदूत, व्यापारी, खोजी, अध्येता, शौकिया आदि) जैसी बातें लिखता गया।

मेरे ख्याल से आप भी एक ऐसी सूची बनाकर देखिए कि इसमें महिला यात्री कितनी हैं। आपके विचार से क्या महिलाएँ यात्रा करना पसन्द नहीं करती थीं, क्या लम्बी समुद्री यात्राएँ महिलाओं के लिए सुरक्षित थीं, क्या महिलाएँ यात्रा वृत्तान्त लिखना नहीं जानती होंगी? या कुछ और कारण भी होंगे जो तालिका नहीं दिखा पाई।

बहरहाल, मेरी तालिका में औपनिवेशिक काल में यूरोपीय महिलाओं द्वारा भारत में यात्रा की शुरुआत दिखाई देने लगी। कम-से-कम इस दौर में यह एहसास भी बनने लगा कि यात्रा करने वालों में सिर्फ पुरुष ही नहीं थे, इस पुरुष प्रधान गतिविधि में महिलाएँ भी शिरकत करने लगी थीं। औपनिवेशिक काल में कई महिलाओं ने भारत की यात्रा की। ऐलिज़ा फे ने यात्रा उपरान्त सन् 1817 में अपने खतों के मार्फत भारत के बारे में लिखा है। मारिया कालकॉट (1785-1842) व अन कैथेरिन इलवुड ने कम्पनी राज में भारतीय लोकजीवन के ब्यौरे दिए हैं। एमली ईडन (1785-1869) के भाई जब भारत के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए तब उन्होंने भारत यात्रा की और आँखों देखी लिख गईं। 19वीं सदी के मध्य में सुश्री आर.एम. कूपलैंड ने भारत यात्रा की थी और 1857 के गदर में कम्पनी की हुकूमत को पहुँची क्षति के बारे में बताया। वैसे सुश्री कूपलैंड ने गदर के दौरान

ग्वालियर के किले में शरण ली थी और किसी तरह बचते-बचाते आगरा पहुँच सकी थीं।

महिला यात्रियों की इसी सूची में एक नाम ऑस्ट्रिया वासी आयदा फिफर (1797-1858) का है। आयदा को बचपन से ही यात्राओं का शौक था। विवाह और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाने के बाद वह मई 1846 में दुनिया की सैर के लिए निकल पड़ीं। ब्राज़ील, चिली, सिंगापुर आदि देशों को देखते-समझते वे नवम्बर 1847 को भारत पहुँचीं। भारत में उन्होंने लगभग छह महीने बिताए। कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, दिल्ली, कोटा, अजन्ता, बम्बई आदि जगहों पर कुछ समय बिताया, लोगों से मिलीं, राजाओं के ठाठ करीब से देखे और खास बात यह कि आयदा की यह यात्रा भारत में रेलवे के आगमन से पहले की है। इसलिए बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी, पालकी के साथ-साथ स्टीमर का भी उपयोग किया गया इस यात्रा में। आयदा का यात्रा वृत्तान्त (अ वूमन्स जर्नी एराउंड द वर्ल्ड) 1851 में पहले जर्मन में और बाद में इंग्लिश में प्रकाशित हुआ।

यहाँ हम पहले आयदा की भारत यात्रा के संस्मरण पढ़ेंगे। बात संक्षेप में रहे और प्रमुख पहलू उभर सकें इसलिए इन्हें सम्पादित कर दे रहे हैं।

आयदा ने अपनी विश्व यात्रा की शुरुआत मई 1846 में की। ब्राज़ील, चिली, सिंगापुर, श्रीलंका व मद्रास बंदरगाह होते हुए वे 4 नवम्बर, 1847 को कलकत्ता पहुँचीं।

कलकत्ता

आयदा ने कलकत्ता में करीब पाँच हफ्ते बिताए होंगे। उन्होंने पाया कि हिन्दु चार जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बँटे हुए थे। आयदा ने देखा कि पाँचवाँ वर्ग अस्पृश्यों का भी है जिन्हें छूना वर्जित है। वे मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते। ये लोग निहायत ही गरीब थे और सामान्य रिहाइश से बाहर मुकर्रर जगहों पर झोपड़ियों में रहते थे।

ये चार जातियाँ अनेक उपजातियों में बँटी हुई थीं। इनमें से सत्तर को मांस खाने की अनुमति थी। साफ-साफ कहा जाए तो हिन्दु धर्म में खून बिखराने और मांस खाने की मनाही है, सिवाय उन 70 उपजातियों के जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। कुछ धार्मिक पर्वों पर पशुओं की बलि भी दी जाती है। गाय की बलि नहीं दी जाती। हिन्दुओं का भोजन मुख्य रूप से चावल, फल, मछली और सब्ज़ियाँ हैं। वे अपना जीवन औसत स्तर पर जीते हैं, दिन में केवल दो सामान्य भोजन करते हैं। वे पीने के लिए पानी, दूध के अलावा कभी-कभी कोका वाइन का उपयोग भी करते हैं।

यहाँ भारत में मुसलमान भी काफी संख्या में हैं। वे बेहद हुनरमन्द और

आयदा लौरा फीफर (1797-1858) ऑस्ट्रिया की एक यात्री व यात्रा वृत्तान्त की लेखिका भी थीं। आयदा के यात्रा वृत्तान्त को सात भाषाओं में अनुदित किया गया। वे बर्लिन और पेरिस की जियोग्राफिकल सोसायटी की सदस्य भी थीं, लेकिन महिला होने की वजह से वे रॉयल जियोग्राफिकल सोसायटी की सदस्य नहीं बन सकीं।

पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाने के बाद वे 1846 में दुनिया के सफर पर निकल पड़ीं। यात्राओं के दौरान अवलोकन व एहसासों को लिखते रहना और यात्रा समाप्ति के बाद यात्रा वृत्तान्त का प्रकाशन करवाना उनका प्रमुख मकसद बन गया था।

उनके द्वारा यात्राओं के दौरान इकट्ठा किए गए वनस्पतियों व पत्थरों के नमूनों को विएना और बर्लिन के प्राकृतिक संग्रहालयों में रखा गया था।

सक्रिय हैं। कई तरह के काम और व्यापार उनके हाथों में हैं। ऐसे कई काम जो हम औरतों के हाथों से देखने के आदी होते हैं उन्हें भी मुस्लिम पुरुषों को करते हुए देख सकते हैं। मसलन सफेद ऊन, रंगीन रेशम एवं सोने के तार से एम्ब्रॉयडरी करना। मुसलमान यूरोपीय लोगों के घर काम करने के भी इच्छुक होते हैं।

कलकत्ता बंगाल की राजधानी है, जो हुगली नदी के किनारे बसा है। आबादी लगभग छह लाख है। इनमें ब्रिटिश फौज शामिल नहीं है। दो हज़ार से ज़्यादा यूरोप वासी और अमरीकी भी हैं यहाँ। कलकत्ता शहर कुछ हिस्सों में बँटा हुआ है जैसे बिज़नेस टाउन, ब्लैक टाउन, यूरोपीय क्वॉर्टर्स आदि। इनमें बिज़नेस टाउन और ब्लैक टाउन संकरी गलियों, बेतरतीब झोपड़ियों एवं मकानों वाला हिस्सा है। यह काफी भीड़-भाड़ वाला भाग है। जब भी यहाँ से गाड़ी से गुज़रते हैं तो गाड़ीवाला लोगों को सावधान करते हुए चलता है।

जिन दिनों मैं कलकत्ता में थी मुझे चीफ जज श्रीमान पील के जन्मदिन की पार्टी में आमंत्रित किया गया था। लेकिन मैंने न्यौता अस्वीकार कर दिया

क्योंकि मेरे पास पार्टी में पहनने के लिए उपयुक्त कपड़े नहीं थे। लेकिन मेरी पार्टी में शरीक न होने की वजह को सिरे से खारिज कर दिया गया। मैंने कॉटन के रंगीन कपड़े पहने और श्रीमति कैमरॉन के साथ पार्टी में गई। वहाँ अन्य महिलाएँ थीं जिन्होंने सिल्क के कपड़े और महँगे गहने भी पहने थे। किसी को मेरी मौजूदगी से शर्मिन्दगी महसूस नहीं हुई। सभी ने मुझसे खुलकर बातचीत की और हर सम्भव तवज्जो दी।

मुझे पहले से बताया गया था कि कलकत्ता में हाथीपाँव बीमारी वाले अनेक लोग हैं, शहर के हर मोड़-नुक्कड़ पर गरीब व हालात के मारे लोगों को भयंकर रूप से सूजे हुए पाँवों के साथ देखा जा सकता है। मेरे पाँच हफ्तों के कलकत्ता प्रवास के दौरान मैंने यह पाया कि यह सच नहीं है। मैंने ब्राज़ील की राजधानी रियो में एक दिन में जितने हाथीपाँव के रोगी देखे उतने पूरे कलकत्ता प्रवास में भी नहीं दिखाई दिए।

कलकत्ता में एक मौके पर मैंने एक छोटे ज़मीदार यानी बाबू के घर की सैर की। इस बाबू की डेढ़ लाख पाउण्ड की जायदाद तीन भाइयों के बीच बँटी हुई है। परिवार प्रमुख मुझे घर के दरवाज़े से लिवाकर बैठक में ले गया। सात साल और चार साल के दो बच्चे मुझसे मिलने आए। उनसे मेरा परिचय करवाया गया। मेरे यह पूछने पर कि क्या ऐसा कोई रिवाज़ है कि लड़कों को ही मिलने के लिए भेजा जाता है, मेज़बान ने तुरन्त मुझे अपनी बेटियों से मिलने भेजा। छोटी बेटी छह महीने की थी और बड़ी नौ साल की। मेज़बान जो असहनीय इंग्लिश बोल रहा था, उसने बड़ी बेटी का परिचय सगाईशुदा के रूप में करवाया और मुझे शादी का न्यौता देते हुए बताया कि छह हफ्ते के बाद लड़की की शादी होनी है। इस बात पर मैंने हैरानी जताई कि लड़की ऐसे बन्धन के लिए काफी कम उम्र की है। लेकिन मेज़बान ने मुझे भरोसा दिलवाया कि लड़की को शादी के बाद उसके पति के हाथों सौप दिया जाएगा। यह पूछने पर कि क्या लड़की अपने भावी पति से प्यार करती है, मुझे बताया गया कि लड़की अपने पति को पहली बार शादी के दौरान ही देखेगी।

बाबू ने मुझे बताया कि हरेक व्यक्ति चाहता है कि जितनी जल्दी-से-जल्दी हो सके उसका दामाद आ जाए। इसलिए छोटी उम्र में लड़कियों की शादी सम्मान की बात है, वहीं बिन ब्याही लड़कियाँ पिता के लिए अपमानजनक हैं।

दो महिलाएँ अपनी ज़ेवरातदानियाँ लाईं और कीमती ज़ेवरात दिखाने लगीं। हिन्दु काफी रुपया कीमती पत्थरों और सोने व चांदी से कशीदाकारी किए मलमल पर खर्च करते हैं।

शादीशुदा औरतों को ऐसे कमरों में घुसने की मनाही थी जहाँ बाहर गली से भीतर झाँका जा सकता है। ऐसे में उसे बाहर से कोई पुरुष देख सकता था। विवाह के योग्य लड़कियाँ इसके मुकाबले फायदे में रहती हैं, वे अपनी आज़ादी का लाभ उठाते हुए व्यस्त गली को एक नज़र देख सकती थीं। अमीर हिन्दुओं की पत्नियाँ या उच्च जाति से सम्बन्धित औरतें खुद को चीनी महिलाओं की तरह घर तक सीमित रखती हैं। पत्नियों के लिए आनन्द की बात सिर्फ इतनी है कि पतियों की कठोरता उन्हें इस बात की अनुमति देती है कि बन्द पालकियों से सफर करते हुए वे अपनी सहेलियों व रिश्तेदारों से मिल सकती हैं।

सम्भवतः हिन्दू पुरुष कई पत्नियों को रख सकते हैं। लेकिन इस अधिकार का उपयोग करते कुछ ही उदाहरण दिखाई दिए। पति के रिश्तेदार भी उसके साथ एक मकान में रहते हैं, लेकिन निवास के लिए अलग-अलग कमरे होते हैं। बड़ा बेटा अपने पिता के साथ भोजन करता है। लेकिन पत्नी, बेटी और छोटे भाई को ऐसा करने की अनुमति नहीं है। पुरुष हो या महिलाएँ, दोनों को तम्बाखू बेहद पसन्द है जिसे वे हुक्के में गुड़गुड़ाते हैं।

विवाह काफी खर्चीला काम होता है। ब्राह्मण तारों का अवलोकन कर कुछ गणनाएँ कर विवाह के लिए उपयुक्त दिन और दिन का घण्टा तय करता है। इस मुकर्रर समय को अन्तिम क्षणों में अवलोकन-गणना कर बदला जा सकता है। इस काम के लिए पण्डित जी महाराज को अतिरिक्त पैसा मिलता है।

सबसे डरावना दृश्य था हिन्दु श्मशान जहाँ - मृत देह को जलाया जाता है। हुगली नदी के किनारे बना श्मशान बस्ती के पास और लकड़ी बाज़ार के सामने है। श्मशान में चार चबूतरे बने हैं जहाँ शवदाह किया जा सकता है।

मौत के करीब पहुँचे इन्सान को लेकर रिश्तेदार वहाँ खामोशी से उसकी आखिरी साँस का इन्तज़ार कर रहे थे। मेरे पूछने पर बताया गया कि यदि ये तुरन्त नहीं मरते हैं तो इन्हें समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा गंगाजल देते हैं। लेकिन जल की मात्रा कम करते जाते हैं और पानी पिलाने की अवधि को बढ़ाते जाते हैं। जब एक बार इस जगह लाया जाता है तो मौत तो तय है, किसी भी कीमत पर। जैसे ही मौत होती है, देह ठण्डी होने से पहले उसे जलाने की जगह रख देते हैं।

किसी अमीर इन्सान का दाह संस्कार थोड़ा खर्चीला होता है। कभी-कभी एक हज़ार रुपए से भी ज़्यादा। रोज़वुड, चन्दन जैसी महँगी लकड़ियों का उपयोग होता है। इसके अलावा पण्डित, वादक एवं भाड़े की महिला

रिश्तेदार भी शवयात्रा का प्रमुख भाग होते हैं।

गरीब लोगों की शवयात्रा ऐसी नहीं होती। वे लोग मृतक को साधारण लकड़ी या गोबर के उपलों पर जलाते हैं। यदि वे यह सब भी नहीं खरीद सकते तो मृत देह को पत्थर से बाँधकर नदी में फेंक देते हैं।

कलकत्ता से बनारस

कलकत्ता में पाँच हफ्ते से ज़्यादा समय बिताने के बाद 10 दिसम्बर को मैं कलकत्ता से बनारस के सफर के लिए चल पड़ी। कलकत्ता से बनारस का ज़मीनी रास्ता 470 मील लम्बा है। कलकत्ता से गंगा नदी के रास्ते बनारस तक पहुँचा जा सकता है।

ज़मीनी रास्ते से सफर करने के लिए पालकी इस्तेमाल होती है जिसे पुरुष उठाते हैं और हर चार-छह मील की दूरी पर अन्य पुरुषों को पालकी सौंप देते हैं। सफर दिन-रात चलता रह सकता है। रात के समय एक इन्सान मशाल साथ लेकर चलता है। मशाल की रोशनी की वजह से जंगली जानवर दूर रहते हैं। पालकी से एक व्यक्ति की यात्रा का खर्च लगभग 200 रुपए या 20 पाउण्ड है।

नदी के रास्ते से सफर स्टीमर से किया जाता है। स्टीमर हर हफ्ते इलाहाबाद के लिए रवाना होता है।

स्टीमर से सफर 14 से 20 दिन का है। बनारस के लिए फर्स्ट कैबिन का किराया 257 रुपए और सैकेंड कैबिन का 216 रुपए है।

मैंने स्टीमर से यात्रा शुरू की। सफर के दौरान पटना, दानापुर, गाज़ीपुर आदि खास जगह आनी थीं। इन सभी जगहों पर स्टीमर रुका और मैंने थोड़ा समय हर शहर की सैर में लगाया।

मैंने पटना के बारे में पढ़ रखा था कि यहाँ की गलियाँ ऊँटों और हाथियों से भरी होती हैं। लेकिन मुझे पटना की गलियों में ऐसा कुछ भी नहीं दिखा। कुछ बैलगाड़ी और घुड़सवार ज़रूर दिखाई दिए।

दानापुर में घूमते हुए मुझे पहली बार हाथी दिखाई दिया। शहर के बाहर आठ खूबसूरत हाथी मौजूद थे।

गाज़ीपुर गुलाब के बगीचों और गुलाब जल व इत्र के लिए मशहूर है। गुलाब जल व इत्र बनाने का तरीका कुछ इस प्रकार है। 40 पौण्ड गुलाब को 60 पौण्ड पानी में डालते हैं। अब धीमी आँच पर आसवन किया जाता है। आसवन से लगभग 30 पौण्ड गुलाब जल मिलता है। इसमें और 40 पौण्ड गुलाब मिलाया जाता है। आसवन से करीब 20 पौण्ड आसुत जल मिलता है।

आसुत जल को बड़ी परातों में भरकर रात की ठण्डी हवा के सम्पर्क के लिए छोड़ दिया जाता है। सुबह पानी पर तैरती हुई तेल की परत मिलती है। इसे पानी पर से हटा लिया जाता है। इस तरह लगभग एक-डेढ़ औंस इत्र मिलता है। गाज़ीपुर में एक औंस इत्र की कीमत 40 रुपए है।

बनारस

बनारस हिन्दुओं के लिए बेहद पवित्र शहर है, जिस तरह मुसलमानों के लिए मक्का और कैथोलिक ईसाइयों के लिए रोम। इस पवित्रता के बारे में हिन्दुओं का ऐसा मानना है कि जो भी इन्सान इस शहर में चौबीस घण्टे गुज़ार लेता है ईश्वर उसकी रक्षा करते हैं, चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला हो। यहाँ के लोगों के धार्मिक विचारों का यह खुलापन सराहनीय है और उन कुछ ईसाई समूहों के लिए शर्म की बात है जो पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं।

शहर बहुत ही खूबसूरत है, खास तौर पर जब इसे नदी की ओर से देखा जाए, क्योंकि तब शहर की कई कमियाँ दिखाई नहीं देतीं। करीब दो मील तक फैले हुए मकान और हवेलियाँ, उनके सामने बनी खूबसूरत सीढ़ियों की कतारें, पत्थरों का स्थापत्य और तोरण द्वार सब चमत्कृत करने वाला है।

बनारस में राजा जयसिंह द्वारा बनवाई गई वेधशाला स्थापत्य का एक शानदार नमूना है। यहाँ एक साधारण-सा टेलिस्कोप भी नहीं दिखाई दिया। सभी उपकरण पत्थरों से बने हुए बड़े-बड़े ढाँचे थे। ऊँचे चबूतरे, इन पर बने हुए अर्धवृत्ताकार और क्वारडिक घेरे। इन पर कुछ चिन्हित किया हुआ है, कुछ लिखा है, कुछ लकीरें भी हैं। इन खगोलीय उपकरणों की मदद से ब्राह्मण खगोलीय अवलोकन और गणनाएँ करते आए हैं। हमने अवलोकन और गणनाओं में व्यस्त ब्राह्मणों से भी मुलाकात की।

बनारस भारत में विविध शिक्षाओं को सीखने का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ छह हज़ार ब्राह्मण हैं जो खगोलीय निर्देश देते हैं और संस्कृत एवं विज्ञान पढ़ाते हैं।

बनारस में मेरे मेज़बान मुझे एक दिन सारनाथ लेकर गए। सारनाथ लगभग 5 मील दूर है बनारस से। वहाँ बड़ी-बड़ी ईंटों से बने तीन टीलेनुमा खण्डहर हैं। अँग्रेज़ सरकार ने इन खण्डहरों के बारे में और जानने के लिए उत्खनन भी करवाया था लेकिन कोई खास मालूमात नहीं मिल सके।

यहीं पास में ही नील के खेत देखे। मैंने पहली दफा नील के पौधों को देखा था - लगभग तीन फीट ऊँचे, नीली-हरी पत्तियाँ। फसल आम तौर पर अगस्त में तैयार हो जाती है। पौधों के तनों को यथासम्भव ज़मीन के करीब से काटते हैं। कटे हुए पौधों के बण्डल बना लेते हैं। इन्हें लकड़ी के बड़े हौदों

में डाल देते हैं। हौद में पानी भरकर इन बण्डलों पर लकड़ी के पटिए रखते हैं। इन पटियों पर पत्थर रखकर बण्डलों को दबाया जाता है। पानी के गुणधर्म के हिसाब से आम तौर पर 16 घण्टे बाद या कुछ दफा कुछ दिनों बाद किण्डवन (फर्मेंटेशन) की प्रक्रिया शुरू होती है। जब पानी का रंग गहरा हरा हो जाता है तो पानी को लकड़ी के दूसरे बर्तन में ले जाते हैं, इसमें चूना मिलाकर लकड़ी के बेलचों से हिलाते हैं। हिलाने की क्रिया तब तक चलती है जब तक नीला अवसाद तली में इकट्ठा न हो जाए। जब तली में नीला पदार्थ इकट्टा हो जाता है तो पानी को बर्तन से बाहर निकाल लेते हैं। नीले पदार्थ को लिनेन की थैलियों में रखकर सुखाया जाता है। जैसे ही नील सूख जाती है, इसे टुकड़ों में तोड़कर पैक कर लिया जाता है।

बनारस में एक सज्जन की मेहरबानी से मुझे किसानों और ज़मीन मालिकों के बीच के सम्बन्धों के बारे में जानकारी मिली। यहाँ खेतिहर मज़दूरों के पास ज़मीन का मालिकाना हक नहीं है। ज़मीन का मालिक या तो ईस्ट इंडिया कम्पनी है या स्थानीय राजा-ज़मीदार। ज़मीन खेतिहरों को किराए पर दी जाती है। ज़मीन का मालिक फसल तैयार होने के पहले से ही किराए का तकादा करने लगता है और गरीब किसान पैसा देने की स्थिति में नहीं होता। ऐसे हालात में किसान अपनी अधपकी फसल को आधी कीमत पर बेच देता है। ज़मीन का मालिक स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर उस फसल को खरीद लेता है। दुर्भाग्य से किसान बार-बार कम संसाधनों के साथ खुद को और अपने परिवार को जीवित रखने के लिए मजबूर हो जाता है।

एक अँग्रेज़ जिसका मैं नाम भूल रही हूँ वो विज्ञान सम्बन्धी किसी काम से भारत की यात्रा कर रहा था। उसने साबित किया कि जब किसान स्थानीय राजाओं के शासन में थे उसकी तुलना में, कम्पनी राज में किसानों की दशा बेहद खराब है।

कहा जाता है कि भारत मुक्त अँग्रेज़ी हुकूमत के आधीन है। लेकिन मैंने पाया कि यहाँ किसानों की दशा ब्राज़ील के गुलामों से भी बुरी है।

दिल्ली

दिल्ली यमुना के किनारे बसा एक शहर है। मुझे बताया गया था कि यहाँ की आबादी एक लाख है और उनमें 100 यूरोपीय नागरिक हैं। लेकिन ब्रूकनर के मुताबिक आबादी पाँच लाख है।

मैंने भारतीय शहरों में अभी तक इतनी चौड़ी और सुन्दर गलियाँ नहीं देखीं थीं। चाँदनी चौक यहाँ का प्रमुख इलाका है। यहाँ पौना मील लम्बी और सौ

फीट चौड़ी गली है। साथ में एक नहर जिसका कुछ हिस्सा पानी से और कुछ कचरे से भरा हुआ था। गली के साथ बने मकान कुछ विशेष नहीं थे। मकानों के पोर्च में बिक्री के लिए सस्ता सामान रखा हुआ था। मैंने दुकानों में कोई कीमती सामान नहीं देखा। शाम के समय कुछ कीमती पत्थर लालटेन की रोशनी में चमक रहे थे। इनके बारे में मैंने कई यात्रियों से सुन रखा था। देसी कारीगरों द्वारा सोने-चांदी के काम किए हुए शॉल में जितनी बारीकी और खूबसूरती से काम किया गया था वैसा पेरिस में भी नहीं दिखाई देता। सोने-चांदी-रेशम का काम किए कश्मीरी शॉल की कीमत 4000 रुपए होती है। कारीगरों के सरल उपकरणों-मशीनों के बावजूद उनकी दक्षता को देखकर अचरज होता है।

चांदनी चौक पर शाम बिताना काफी रुचिकर था। यहाँ गरीब और अमीर भारतीयों के जीवन को देखा जा सकता है। किसी भी और शहर में इतने ज़्यादा राजकुमार, दरबारी नहीं होंगे। पेंशनयाफ्ता राजा, उनके रिश्तेदार, कुल जमा कुछ हज़ार। जब ये सजे-सँवरे हाथियों पर चढ़कर कभी-कभार जनता के बीच जाते हैं तो एक जुलूस जैसा नज़ारा होता है - हाथी, घोड़े, चाकर और आधी खुली गाड़ियों में सवार उमंग से भरी खूबसूरत औरतें। यदि आपको सीधे-सीधे यह न मालूम हो कि कोई औरत किस वर्ग से सम्बन्धित है, तो बड़ा ही मुश्किल है कि औरतों के व्यवहार या हावभाव को देखकर उनकी स्थिति के बारे में कुछ कहा जा सके। दुर्भाग्य से किसी अन्य देश के मुकाबले भारत में एक खास वर्ग की काफी औरतें हैं। इसका प्रमुख कारण एक अप्राकृतिक परम्परा है जिसके तहत हर परिवार लड़की के जन्म के कुछ महीनों के भीतर ही उसका विवाह कर देता है। यदि लड़की का पति शादी के तुरन्त बाद या कुछ साल बाद जब भी मरता है, तो लड़की को विधवा करार दिया जाता है। इसके बाद वह दोबारा शादी नहीं कर सकती। सामान्यतः वो इसके बाद नर्तकी बन जाती है। विधवाओं के हालात को बदकिस्मती से जोड़कर देखा जाता है। यह माना जाता है कि वैधव्य किसी औरत के पूर्वजन्म के ऐसे किसी कर्म का नतीजा है जिसके लिए वो इसकी पात्र थी। भारत में लड़कियाँ अपनी ही जाति में शादी कर सकती हैं।

भारत में मुगल बादशाह को सालाना पेंशन 14 लाख रुपए मिलती है। उनकी अपनी आमदनी भी है, फिर भी बादशाह के हालात बनारस के राजा से अच्छे नहीं हैं। बादशाह को अपने 300 परिजनों, अपने दरबारियों, नौकरों-चाकरों, हरम की औरतों आदि का पालन-पोषण करना होता है। इसके अलावा हाथी, घोड़े, ऊँट आदि का भरण-पोषण भी करना है। इस सब की वजह से शाही खज़ाना हमेशा खाली ही रहता है।

एक दिन घर लौटते समय हमने राजा जयसिंह द्वारा बनवाई गई खगोलीय वेधशाला देखी। ऐसी ही वेधशाला हमने बनारस में भी देखी थी। दोनों जगह वेधशाला की बनावट एक जैसी ही थी। बनारस में अभी तक वेधशाला काफी संरक्षित है लेकिन दिल्ली में वेधशाला खण्डहर हो गई है। कुछ यात्रियों के अनुसार ये स्मारक भारतीय कला का अनोखा नमूना है।

दिल्ली से कोटा

मुझे दिल्ली से कोटा-उज्जैन-इन्दौर होते हुए अजन्ता-ऐलोरा जाना था। ऐलोरा से बम्बई और फिर घर वापसी।

जब मैं कलकत्ता में थी तब मुझसे आग्रह किया गया था कि मैं दिल्ली के आगे अपना सफर जारी न रखूँ। मुझे बताया गया कि वो भूभाग अँग्रेज़ी हुकूमत के तहत नहीं है, दूसरे वहाँ के लोग अपेक्षाकृत कम सभ्य हैं। मुझे ठग या फाँसीगरों के किस्से सुनाए गए।

दिल्ली से कोटा का सफर लगभग 290 मील का है। मेरे पास यात्रा के साधन के रूप में तीन विकल्प थे - पालकी, बैलगाड़ी, ऊँट। इनमें से कोई भी बहुत तेज़ नहीं था। कोई मुख्य सड़क नहीं थी, सफर के दौरान रुकने की कोई सिलसिलेवार व्यवस्था नहीं थी। यात्रा के शुरू से अन्त तक वही लोग और जानवर रहने वाले थे। सफर के दौरान एक दिन में अधिकतम बीस-बाइस मील की दूरी तय की जा सकती थी। पालकी से सफर के लिए ज़रूरी है कि पालकी उठाने के लिए आठ लोगों को अनुबन्धित किया जाए। इसके अलावा सामान-असबाब के लिए अलग से। पालकी उठाने वालों को अपना खर्च निकालने के बाद आठ रुपया महीना से ज़्यादा नहीं मिलता।

पालकी की यात्रा खर्चीली होती है क्योंकि पालकी ढोने वालों को किए जाने वाले भुगतान में यात्रा के अन्य खर्च और पालकी की वापसी का भुगतान भी करना होता है। ऊँट पर सफर करना भी खर्चीला है लेकिन ऊँट की पीठ पर सफर सुकून भरा नहीं होता। इसलिए मैंने तय किया कि सफर के लिए कम खर्चीला साधन बैलगाड़ी ठीक रहेगी।

चूँकि मैं अकेले सफर करने वाली थी इसलिए मेरे मित्र डॉ. स्प्रेंजर ने सफर की समस्त ज़रूरी तैयारियाँ करवाईं। उन्होंने गाड़ी वाले के साथ हिन्दुस्तानी में लिखित अनुबन्ध किया जिसके मुताबिक यात्रा शुरू करने से पहले मुझे किराए का आधा यानी 15 रुपए अभी देना है और शेष 15 रुपए कोटा पहुँचने के बाद देना होगा। गाड़ीवाला मुझे 14 दिन में कोटा पहुँचाएगा। यदि सफर में इससे ज़्यादा दिन लगते हैं तो मैं 3 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से कटौती करने की अधिकारी हूँ। स्प्रेंजर ने अपने विश्वसनीय अर्दली को

इस सफर में मेरे साथ भेजा। अर्दली की पत्नी ने मेरी यात्रा की सभी तैयारियाँ करवाईं।

दिल्ली से कोटा के रास्ते में आसपास के इलाकों में एकरसता है। एक जैसे खेत, घास के मैदान, फलों के बगीचे। यहाँ मक्का एक फीट ऊँचा हो गया है। लेकिन पीले फूलों वाले पौधे भी बड़ी संख्या में साथ में हैं। इसलिए यह बता पाना मुश्किल है कि मक्का या खरपतवार, क्या देखा जा रहा है।

कपास की खेती यहाँ काफी महत्व की है। भारतीय कपास के पौधे उतने ऊँचे और मोटे नहीं होते जितने मिस्र में होते हैं। वैसे यह भी माना जाता है कि कपास की गुणवत्ता पौधे की ऊँचाई पर निर्भर नहीं करती और इसीलिए इस देश की कपास महीन और बेहतरीन है।

कोटा के सफर के अन्तिम दिन मैंने अफीम के खेत देखे। वो एक भव्य दृश्य पेश कर रहे थे। अफीम के पौधों की पत्तियाँ मोटी व चमकदार और फूल बड़े और विविध रंगीन धारियों के साथ। पॉपी से अफीम के निष्कर्षण का तरीका सरल लेकिन बेहद धीमा है। शाम के समय कच्चे पॉपी के ऊपरी सिरों पर कई जगहों पर चीरा लगाया जाता है। इन चीरों से सफेद तरल बहकर आता है। यह तरल जैसे ही हवा के सम्पर्क में आता है गाढ़ा होकर बूँद की तरह जम जाता है। अगली सुबह पॉपी पर जम गई बूँदों को चाकू की मदद से खुरचकर इकट्ठा किया जाता है। पॉपी के सिर और तने को कुचलकर, उबालकर कम मात्रा में अफीम प्राप्त की जाती है।

कई किताबों में और खासकर ज़िम्मरमैन की किताब - पॉकेट बुक ऑफ ट्रैवल्स - में मैंने पढ़ा था कि भारत में अफीम के पौधे चालीस फुट तक ऊँचे होते हैं। और अफीम के पौधे पर लगने वाला केप्सूल या डोडा इतना बड़ा होता है जितना कि किसी छोटे बच्चे का सिर। लेकिन मैंने पाया कि यह सब ठीक नहीं है। अफीम के पौधे तीन-चार फीट तक ऊँचे होते हैं और डोडा आकार में मुर्गी के अण्डे के बराबर होता है।

सफर के तेरहवें दिन हम कोटा पहुँच गए। सफर पूरा होने का सन्तोष मुझे, गाड़ीवाले और सहायकों – सभी को था। गाड़ीवाले ने मुझसे उतना ही किराया लिया जितना तय किया गया था, विदेशी होने के बावजूद अतिरिक्त कुछ नहीं लिया। मुझे सफर के दौरान वो सब सुविधाएँ दी गईं जो उनके धर्म के नियमों के तहत मिल सकती थीं। मैंने अपनी रातें खुले कमरे या खुले आसमान के नीचे गरीब और निचले तबकों के लोगों के साथ बिताईं। लेकिन मुझे कभी किसी बुरे व्यवहार (वचन या कर्म) का सामना नहीं करना पड़ा। मेरा कभी कोई सामान चोरी नहीं हुआ। जब कभी मैं बच्चों को ब्रेड, चीज़,

चॉकलेट या ऐसा ही कुछ सामान देती थी तो बच्चों के माता-पिता कृतज्ञ भाव से अपना धन्यवाद दर्शाते थे। काश, यूरोपीय लोग इस बात को जान पाते कि किस तरह बाल-प्रकृति वाले दिलों को ध्यान देकर और दयालुता दिखाकर जीता जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्य से यूरोपीय लोग इन पर बल और तुच्छता की भावना से शासन कर रहे हैं।

***

आयदा ने कोटा से उज्जैन तक का सफर ऊँट की पीठ पर बैठकर किया। उज्जैन-इन्दौर-बुरहानपुर होते हुए अजन्ता और वहाँ से बम्बई। अप्रैल 1848 में आयदा जहाज़ पर सवार होकर अपने अगले सफर के लिए रवाना होती हैं।

यहाँ आयदा के सफर का वर्णन रोक कर औपनिवेशिक काल की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों को समझने की कोशिश करेंगे।

आयदा के सफर के बारे में पढ़ते हुए यह भी ख्याल आता है कि उन्नीसवीं सदी में पर्यटन के लिहाज़ से काफी यात्राएँ की जाने लगी थीं और अधिकारी वर्ग एवं अध्येताओं के अलावा सामान्य लोग भी यात्रा कर रहे थे। सामान्य लोग कोई प्रोफेशनल यात्री नहीं थे - जो भौगोलिक, वैज्ञानिक या जनजातीय समूहों का अध्ययन करने आए हों। इस लेख के शुरू में औपनिवेशिक काल में भारत की यात्रा करने वाली कुछ महिलाओं के नाम लिए गए हैं, इनमें से ऐलिज़ा फे, अन कैथेरिन इलवुड व एमली ईडन उपन्यास-कविता जैसी विधाओं में लिखने वाली साहित्यकारा थीं।

औपनिवेशिक काल में भारत आने वाले यात्रियों में कुछ घुम्मकड़ थे जो अपने पैसों से, दोस्तों से चन्दा जुगाड़कर, राज्य से वित्तीय मदद लेकर यात्राएँ कर रहे थे। आयदा भी इन्हीं में से एक थीं। आयदा को ऑस्ट्रिया की सरकार ने इस यात्रा के लिए सौ पाउण्ड की प्रोत्साहन राशि दी थी।

यात्रा करने वाले लोगों को ध्यान में रखते हुए ट्रैवलर्स गाइड, किसी देश के भौगोलिक, सामाजिक-आर्थिक जीवन के ताने-बाने के बारे में नज़रिया बनाने वाले विचारों, का प्रकाशन भी होने लगा था। इन सबके साथ अनेक यात्री अपने अवलोकनों, विश्लेषणों को भी लिखने लगे थे। यात्रा वृत्तान्त या प्रियजनों को खत लिखकर किसी देश-समाज के बारे में लिखने की साहित्य विधा भी मशहूर होने लगी थी। यदि आपको याद हो तो जूल्स वर्न का उपन्यास - अराउंड द वर्ल्ड इन ऐटी डेज़ - सन् 1873 में लिखा गया काल्पनिक यात्रा का ऐसा ही एक ताना-बाना है। लेकिन जानकारियाँ इतनी सटीक हैं मानो वाकई किसी यात्री का लिखा विवरण हो।

ब्रिटिश-कालीन भारत को लेकर दुनिया के कई देशों में एक छवि रूढ़ हो चुकी थी। आयदा के वृत्तान्त से यह झलकता है कि वो भी भारत के लोगों, भारत की वनस्पतियों को लेकर कुछ गलत फहमियों के साथ यहाँ आई थीं। लेकिन अच्छी बात यह है कि वो सच्चाई से रू-ब-रू होती हैं और सुनी-सुनाई बातों तक अपने को सीमित नहीं रखतीं।

औपनिवेशिक काल में भारत में सैंकड़ों यूरोपीय लोग प्रशासनिक सेवाओं, फौज, मिशनरी भावना, व्यापार-कारोबार के सिलसिले में भारत आ रहे थे। इनमें से कई ने खत, डायरी, संस्मरण, प्रशासनिक रिपोर्ट, गेज़ेटियर आदि के मार्फत ब्रिटिश-कालीन भारत के बारे में काफी कुछ लिखा है। इस वजह से इस दौर के इतिहास लेखन के लिए किसी एक स्रोत पर बहुत निर्भरता नहीं दिखती। बस, आयदा जैसी घुमन्तू महिला के लेखन का एक खास पक्ष यह है कि वे एक महिला के नज़रिए से कुछ पहलुओं को देखने-समझने की कोशिश करती हैं।

अन्तिम बात, भारत में भी तो सदियों से लोग देश के भीतर खूब यात्राएँ करते थे। फिर हमारे यहाँ यात्रा वृत्तान्त क्यों नहीं लिखे गए? क्या हमारे लोगों को यात्रा वृत्तान्त लिखने का शौक नहीं था, या उनके यात्रा वृत्तान्तों को हिफाज़त से संरक्षित नहीं किया जा सका? आप क्या सोचते हैं इस बारे में?

कुछ सवाल आपके लिए

1. आयदा के यात्रा वृत्तान्त में ऐसे कौन-से प्रसंग हैं जहाँ आपको लगता है कि आयदा से भारतीय समाज को समझने में भूल-चूक हुई है?
2. ऐसे कौन-से प्रसंग हैं जहाँ आयदा पूर्व-अवधारणाओं से विचलित हुईं?
3. बनारस की वेधशाला देखकर आयदा यह क्यों कहती हैं कि यहाँ साधारण दूरबीन भी नहीं है। क्या बनारस की वेधशाला, उस समय की यूरोपीय वेधशालाओं के मुकाबले कुछ कमतर थी?

माधव केलकर: 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।
संदर्भ सूची - *अ वूमन्स जर्नी अराउंड द वर्ल्ड* - आयदा लौरा फिफर।

भाषा शिक्षणः समग्र-भाषा पद्धति

सौरभ रॉय

हमारी शिक्षा व्यवस्था पाठ्य-पुस्तकों पर टिकी है और किताबों का दारोमदार है उसके पठन पर। इसीलिए बच्चों के स्कूल में जाते ही जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है वह है भाषा शिक्षण। भाषा सीखने-सिखाने की जो दो मूल पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं वो हैं ध्वनि-वर्ण पद्धति और समग्र-भाषा पद्धति। यहाँ पर हम समग्र-भाषा पद्धति की विस्तार से बात करेंगे। इस दृष्टिकोण के साथ कि स्कूलों में काम कर रहे शिक्षकों का ज़मीनी अनुभव है यह लेख।

विद्यालयों में जाने से पहले मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि कक्षा 5 के बच्चे किताब भी नहीं पढ़ पाते होंगे। पिछले सात-आठ साल के काम के दौरान कई बार शिक्षकों और बच्चों से पढ़ना सीखना-सिखाने पर बातचीत की कवायदों ने मुझे यह समझा दिया कि अधिकांश बच्चे सामान्य तौर पर पाठ्य-पुस्तकों में लिखी बातें नहीं पढ़ पाते। कई बार यह भी पाया कि कक्षा चार-पाँच के बच्चे अपनी पाठ्य-पुस्तक का पाठ तो पढ़ लेते हैं, पर अपने से निचली कक्षा के पाठ या कोई अन्य विषयवस्तु नहीं पढ़ पाते। यह तो और हैरान करने वाली बात थी।

यदि बच्चे पढ़ भी पाते हैं तो अटक-अटक कर जैसे कि शमी ने पढ़ा, 'ब' ब में आ की मात्रा 'बा', 'र' र में ई की मात्रा 'री', 'श' – 'बारीश' 'आ' 'ई' – 'आई' 'छ' 'म' – 'छम', 'छ' 'म' – 'छम', 'छ' 'म' – 'छम', 'ल' ल में ए की मात्रा 'ले' 'क' 'र' – 'लेकर' 'छ' छ में आ की मात्रा 'छा', 'त' त में आ की मात्रा 'ता' – 'छाता' 'न' न में इ की मात्रा 'नि' 'क' 'ल' ल में ए की मात्रा 'ले' – 'निकले' 'ह' 'म' – 'हम'।

इसी अंश को छाया ने इस तरह पढ़ा था - 'बा' 'री' 'श' – 'बारीश', 'आ'

'ई' – 'आई', 'छ' 'म' – 'छम', 'छ' 'म' – 'छम', 'छ' 'म' – 'छम', 'ले' 'क' 'र' – 'लेकर', 'छा' 'ता' – 'छाता', 'नि' 'क' 'ले' – 'निकले', 'ह' 'म' – 'हम'। परन्तु तब भी उस कक्षा के शिक्षक मानते हैं कि उस बच्चे को पढ़ना आता है। बड़ा प्रश्न यह है कि इसे क्या कहा जाए - पढ़ना या डिकोडिंग? क्योंकि पढ़ने में तो समझना भी शामिल है। इस प्रकार काम करते-करते यह बात समझ में आई कि पढ़ना सीखना आज भी प्राथमिक शिक्षा के मूलभूत संकटों में से एक है।

इस दौरान कई शिक्षकों ने बातचीत में कई बार बच्चों द्वारा न पढ़ पाने का कारण बच्चों की पृष्ठभूमि (हरबोले थारू, नेपाली, कसाइयों आदि के लिए), समुदाय का वातावरण, परिवेश में होने वाले आपसी संवाद की अलग भाषा, परिवार के कार्य आदि को बताया। इसके विपरीत अवलोकनों के दौरान यह समझ भी बनी कि अलग-अलग पृष्ठभूमि से आए कई बच्चे वह सब सीख पा रहे हैं जो बच्चों के लिए उस कक्षा-विशेष में सीखना ज़रूरी माना जाता है। पढ़ना भी इसमें शामिल है। बच्चों के कुछ न सीखने के लिए सिर्फ उनके परिवार को, उनकी पृष्ठभूमि या उनके दृष्टिकोण को ही उत्तरदायी ठहराया जाना सही नहीं है। सामान्यतः शायद बच्चों के न सीखने की जड़ कक्षा में पढ़ने-पढ़ाने के तरीके और विधियों में है। इसलिए यदि बच्चे नहीं सीख पा रहे हैं तो इसका अर्थ है कि कक्षा में प्रयुक्त विधि कारगर नहीं है। अतः यह सोचना चाहिए कि क्या सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में इन विधियों को त्यागकर किसी नए तरीके को अपनाने की ज़रूरत है।

इन कोशिशों के लिए लगातार शिक्षकों के साथ बातचीत ज़रूरी है, लेकिन यह भी सही है कि औपचारिक मंचों पर अकादमिक बातचीत के मौके बहुत ही सीमित हैं। शिक्षक साथियों के साथ लगातार फॉलोअप करने के लिए शिक्षकों ने स्वयं ही एक 'अनौपचारिक शिक्षक समूह' का गठन कर लिया। अनौपचारिक शिक्षक समूह महीने, दो महीने में एक दिन मिलकर आपस में अपने स्कूल के मुद्दे, काम के मुद्दे, बच्चों के साथ काम करने में आने वाली दिक्कतों आदि के बारे में विचार साझा करते और उपाय निकालने की कोशिश करते।

ध्वनि-वर्ण पद्धति

प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश के तुरन्त बाद उनका सामना पढ़ने और लिखने की निरर्थक कवायदों से होता है। इस प्रक्रिया में चरणबद्ध रूप से स्वर-व्यंजन रटाने, बारहखड़ी सिखाने, बिना मात्राओं के शब्द को पढ़ाने, मात्राओं के साथ शब्द पढ़ाने, बिना मात्राओं के छोटे-छोटे वाक्य, मात्राओं

के साथ छोटे-छोटे वाक्य और फिर कविता, कहानी तथा अनुच्छेद पढ़ाने की कवायदें की जाती हैं। इसको हम 'ध्वनि-वर्ण अप्रोच' कह सकते हैं। इसमें वर्ण को एक खास ध्वनि के रूप में पहचानने की कोशिश की जाती है। शिक्षक का पूरा ध्यान इस पर होता है कि ध्वनि और उसके लिखित संकेतकों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाए ताकि बच्चे ध्वनि को सुनकर इन संकेतों को लिख पाएँ या संकेतों को देखकर वही ध्वनि निकाल पाएँ।

इस प्रक्रिया में कक्षा की भाषा एवं बच्चे की भाषा के बीच टकराव बच्चे को पढ़ने की प्रक्रिया से ही दूर कर देता है। सामान्यतः बच्चे स्कूल में प्रवेश के पहले अपने आसपास के परिवेश, घर-संसार, रिश्ते-नाते, खेत-खलिहान, बाज़ार आदि के बारे में काफी कुछ जानते हैं। इन सभी बातों को वे अपनी भाषा में व्यक्त कर पाते हैं। उनसे अर्थ निकाल पाते हैं। ध्वनि-वर्ण अप्रोच में अक्सर बच्चे अर्थ नहीं निकाल पाते और अगर अर्थ निकालते भी हैं तो वह भी काफी बाद में। ऐसा इसलिए क्योंकि वर्ण सीखने के दौरान अर्थ-ग्रहण करने की प्रक्रिया नहीं होती बल्कि पूरा ज़ोर उच्चारण पर होता है। सामान्यतः वर्णमाला ही पूरी तरह से रटवा दी जाती है। जब 'क' से 'कमल' पढ़ाते हैं तो पढ़ाने के तरीके से यह लगता है कि 'क' का मतलब 'कमल' है ना कि 'कमल' तीन वर्णों से मिलकर बना है क-म-ल। इसके साथ ही 'क' का कोई चित्र बच्चे के दिमाग में नहीं बनता। रटवाने की यह प्रक्रिया पूरी बारहखड़ी तक चलती है। इसके बाद के चरण में बिना मात्राओं के छोटे-छोटे शब्द और वाक्यों को पढ़ाते हैं तो सामान्यतः 'घर पर चल', 'छत पर मत चढ़', 'रथ तक चल', 'कल तक चल' जैसे वाक्य होते हैं, जिनका बच्चों के अनुभव से कोई लेना-देना नहीं है। इसके बाद मात्राओं वाले शब्द और सरल वाक्य आते हैं, इनके भी सीमित अर्थ होते हैं। इतनी कवायदों के बाद जाकर बच्चों को यह मौका मिलता है कि वे कविता, कहानियाँ तथा अनुच्छेद पढ़ें। यह सामग्री ज़रूर अर्थ-पूर्ण होती है, परन्तु तब तक कई बार बच्चों को वर्णों को जोड़कर पढ़ने की ऐसी आदत विकसित हो जाती है कि शब्दों के उच्चारण के साथ उनका अर्थ-निर्माण मुश्किल हो जाता है।

शिक्षकों के इस अनौपचारिक समूह के साथ काम करने के दौरान यह भी देखा कि पढ़ना सीखने-सिखाने के लिए कुछ शिक्षक साथियों द्वारा अलग पद्धति काम में लाई जा रही है। इस पद्धति को उन शिक्षकों ने समग्र-भाषा पद्धति या अप्रोच कहा।

समग्र-भाषा पद्धति

समग्र-भाषा पद्धति भाषा सीखने-सिखाने का एक दर्शन है। इस दर्शन के

साथ काम करने वाले शिक्षक बतलाते हैं कि कैसे भाषा पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया इनके विद्यालयों के बच्चों को बोझिल न लगकर उत्सुकता-पूर्ण एवं मज़े से भरपूर लग रही है। उदाहरण के लिए एक शिक्षक साथी ने साझा किया कि उन्होंने कक्षा-1 की शुरुआत बच्चों के साथ बातचीत से की। बातचीत के विषय उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से होते थे - जैसे, "आज आपके यहाँ क्या खाना बना है?", "घर से स्कूल आने में क्या-क्या देखा" आदि। इस तरह की बातचीत को शिक्षक ने कुछ समय तक लगातार किया, फिर कुछ सप्ताह के बाद उनकी ही बात को बोर्ड पर लिखने की शुरुआत की। इसका मकसद था कि बच्चे यह समझ पाएँ कि जो बात कही जाती है उसे लिखा भी जा सकता है।

तत्पश्चात् शिक्षक ने जो बोर्ड पर लिखा था उस पर उँगली रख कर पढ़ने की शुरुआत की। इस प्रकार की बातचीत के साथ-साथ शिक्षक साथी कुछ कविता और कहानी पर भी काम करते रहे। इन कविताओं में 'ऊँट चला भई ऊँट चला', 'धम्मक-धम्मक आता हाथी', 'पहाड़ी पर पेड़ था', 'एक कहानी कहनी है', 'क्योंजी बेटा रामसहाय', 'वह देखो वह आता चूहा', 'चन्दा मामा, चन्दा मामा', 'रज्जू के बेटों ने', 'लाल टमाटर' आदि शामिल थे। इनमें से एक कविता के अंश पर शिक्षक द्वारा किया गया काम समूह के साथ साझा किया गया।

लाल टमाटर, लाल टमाटर
मैं तो तुमको खाऊँगा।
अभी न खाओ मैं कुछ दिनों में
और अधिक पक जाऊँगा।
लाल टमाटर, लाल टमाटर
मुझको भूख लगी भारी।
भूख लगी है तो तुम खा लो
यह गाजर-मूली सारी।

शिक्षक साथी ने कविता का यह अंश बच्चों को तीन-चार बार सुनाया और फिर बच्चों को सुनाने को कहा। इस प्रकार उन्होंने यह कोशिश की कि बच्चों को कविता याद हो जाए। यदि बच्चों द्वारा कविता सुनाने में कुछ हेर-फेर हो जाती तो बाकी बच्चे उसे स्वयं ही ठीक कर देते। कभी-कभी शिक्षक भी उस कविता को पुनः सुना देते। शिक्षक ऐसा मानते हैं कि बच्चों की मौखिक भाषा उनके पढ़ने और लिखने की प्रक्रिया में मददगार होती है।

एक बार जब बच्चों को यह कविता याद हो गई तो शिक्षक ने 'टमाटर' पर बातचीत की, जैसे – "किस-किस के घर खाने में टमाटर का उपयोग होता है?", "टमाटर घर पर कहाँ से लाते हैं?", "किनके घरों में टमाटर उगता है?" आदि। इसी तरह उन्होंने 'लाल' और 'खाने' आदि विषयों पर भी बात की। इसके बाद शिक्षक ने बोर्ड पर यह कविता लिख दी और प्रत्येक शब्द पर उँगली रखकर कविता को फिर से पढ़ा। कुछ समय बाद शिक्षक ने बच्चों से भी बोर्ड पर लिखी कविता पढ़ने की प्रक्रिया करवाई। बच्चों ने उँगली रख कर कविता को पढ़ने की कोशिश की। इस प्रकार शिक्षक ने यह प्रयास किया कि बच्चे उच्चारण और प्रतीक के सम्बन्ध को पकड़ पाएँ। तत्पश्चात् शिक्षक ने 'टमाटर' शब्द पर गोला लगाया और बच्चों से पूछा कि यह शब्द कविता में कहाँ-कहाँ आया है। बच्चों ने बड़े मज़े से इस प्रक्रिया में 'टमाटर' शब्द को पहचाना और शिक्षक ने उन पर गोला लगाया। यह शिक्षक साथी जानते थे कि शब्द भी एक तरह से चित्र है और बच्चे एक चित्र के समान दूसरे चित्र को अच्छी तरह पहचान सकते हैं।

शिक्षक साथी ने बच्चों को यह कविता अपनी कॉपी/स्लेट पर लिखने को कहा। बच्चों ने इसको लिखने की कोशिश की। कुछ बच्चों की स्लेट पर शिक्षक ने स्वयं लिखा। स्लेट पर लिखने के पश्चात् बच्चों को अपनी कॉपी में 'लाल' शब्द पहचान कर उस पर गोला लगाना था। बच्चों ने यह काम अपनी स्लेट पर किया और साथ-ही-साथ शिक्षक ने बोर्ड पर। इसके बाद शिक्षक ने यही प्रक्रिया 'भूख' शब्द के साथ दोहराई। बच्चों ने इस शब्द के आगे भी स्लेट पर गोला लगाया।

इन सब के पश्चात् शिक्षक ने बोर्ड पर एक तरफ 'टमाटर' शब्द लिखा और उसे ज़ोर-से इस तरह बोला 'ट' 'मा' 'ट' 'र' टमाटर। बच्चों ने भी बोला 'टमाटर'। शिक्षक ने यह प्रक्रिया बच्चों के साथ कुछ बार दोहराई और कोशिश की कि बच्चे उच्चारण और वर्ण (लिपि) के सम्बन्ध को समझ पाएँ।

बच्चों के आसपास के शब्द

फिर शिक्षक ने 'ट' लिखा और पूछा, "बताओ 'ट' कहाँ-कहाँ आता है?" कुछ देर कक्षा में शान्ति रही। फिर एक बच्चे ने कहा, "सर - टोकरी।" शिक्षक ने 'टोकरी' को बोर्ड पर लिख दिया। फिर कहा, "अच्छा, कुछ और बताओ।" तो एक बच्चे ने कहा - टोपी। शिक्षक ने इसे भी लिख दिया। तभी किसी ने कहा – पानी की टोंटी। शिक्षक ने पूरा लिखा 'पानी की टोंटी' और 'टोंटी' को रेखांकित कर दिया। इसके बाद तो एक-एक करके बच्चे बताने लगे। किसी ने कहा- मुर्गे की टंगड़ी, किसी ने कहा- आलू टिक्की, टिकिया,

मम्मी की टिकुली, कुत्ते की टट्टी, टप्पा फोड़, घड़ी की टिन-टिन, टूथ पेस्ट, टैक्सी, टेबल, टेलीफोन, टैंक, ट्रैक्टर, ट्रक, ट्रॉली, टोस्ट, टेबलेट, टिकट, टॉर्च, घण्टी की टन-टन आदि। शिक्षक ने इन सभी को बोर्ड पर लिखा और 'ट' से शुरू होने वाले शब्दों को रेखांकित कर दिया। इसी बीच एक बच्चे ने कहा – पटाखा। शिक्षक साथी ने कुछ देर सोचकर इसे भी बोर्ड पर लिख दिया और सभी से प्रश्न पूछा, "बताओ इसमें 'ट' कहाँ है?" तो कुछ बच्चों ने कहा, "सर बीच में।" शिक्षक ने उसे रेखांकित कर दिया।

अब शिक्षक ने एक-एक करके सब शब्दों को उँगली रख कर पढ़ा। बच्चों ने भी इस प्रक्रिया में शिक्षक का साथ दिया। इसके बाद शिक्षक ने बच्चों से कहा कि इसे अपनी कॉपी/स्लेट पर लिख लो। लिखने की प्रक्रिया में कई बच्चों की शिक्षक ने मदद भी की। तत्पश्चात् शिक्षक ने यही प्रक्रिया 'लाल' शब्द के साथ दोहराई। इसके बाद शिक्षक ने राजीव से पूछा, "अच्छा बताओ, मुर्गी की टंगड़ी कब खाई तुमने?" राजीव ने कहा, "सर परसों।" शिक्षक ने बोर्ड पर लिख दिया, 'राजीव ने परसों मुर्गे की टंगड़ी खाई।' इसमें उन्होंने मुर्गे की टंगड़ी को रेखांकित करके टंगड़ी पर गोला लगा दिया। अब शिक्षक ने इस पर उँगली रखकर दो-तीन बार पढ़ा और बच्चों को इसे दोहराने को कहा। शिक्षक ने एहज़ान से पूछा, "तुमने आलू टिक्की कब खाई थी?" एहज़ान ने कहा, "सर हर इतवार को खाता हूँ।" शिक्षक ने बोर्ड पर लिखा, 'एहज़ान हर इतवार को आलू टिक्की खाता है' और इसे भी उँगली रखकर बार-बार पढ़ा और बच्चों को दोहराने को कहा। कुछ समय बाद शिक्षक ने बच्चों को बोर्ड पर आकर उँगली रखकर पढ़ने को कहा और इसके बाद सभी बच्चों से कहा कि इसे लिख लें। शिक्षक साथी ने यह बताया कि उसने यह प्रक्रिया बच्चों के साथ कई कविताओं एवं कहानियों के द्वारा की। इससे बच्चे बिना वर्ण रटाए एवं वर्णमाला पढ़ाए भी वर्णों को पहचान पा रहे थे और उनका उपयोग अपने सन्दर्भ में शब्द-वाक्य निर्माण हेतु कर पा रहे थे।

इसी प्रक्रिया के दौरान शिक्षक ने बच्चों से यह भी पूछा कि आपके घरों में और कौन-कौन-सी सब्ज़ियाँ आती हैं। बच्चों ने जिन सब्ज़ियों के नाम बताए उन्हें बोर्ड पर लिख दिया। बोर्ड पर लिखे गए कुछ नाम निम्न थे -

आलू, अल्लू

प्याज़, पियाज़, गण्डा, टमाटर, टिमाटर, बैंगन, बेगुन, बीन्स, फ्रासबीन, बोदी, बोरा, छेमी मटर, छिम्मी, गोभी, गाजर, पालक, पलिंगू, तुरई, गुदडी, सीताफल, कद्दू, तूमा

शिक्षक ने कोशिश की कि वह सब्ज़ियों को अन्य भाषाओं में जो भी कुछ

कहते हैं उन्हें भी इसी सूची में लिखें। इस प्रकार यह कोशिश की जाती है कि कक्षा के अन्दर की भाषाई विविधता उनके लिए एक संसाधन बने।

शिक्षकों के अपने सन्देह

इतना कुछ साझा हो जाने के बावजूद अनौपचारिक समूह के ही कई शिक्षक साथियों के मन में समग्र-भाषा पद्धति को लेकर गहरे सन्देह हैं। इस लेख में आगे हम इनको गैर समग्र-भाषी उप-समूह कहेंगे। गैर समग्र-भाषी उप-समूह के शिक्षक साथी इस बात से खुश हैं कि उनके ब्लॉक के कुछ विद्यालयों में बच्चे कविताओं और कहानियों को मज़े से बोल-बोल कर पढ़ पा रहे हैं। पर पढ़ने के आधार 'ध्वनि-वर्ण संयोजन' के साथ शुरुआत न करने को लेकर इनके कई सारे सवाल हैं। समग्र-भाषा पर काम कर रहे शिक्षक साथियों के काम को इस उप-समूह के साथी अभी स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। गैर समग्र-भाषी उप-समूह के कई शिक्षक साथी अनौपचारिक समूह की बैठकों में यह सवाल करते हैं कि आखिर जब बच्चों के साथ ध्वनि और उनके प्रतीक-चिन्ह पर काम नहीं करेंगे तो वे पढ़ कैसे सकते हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि इन शिक्षकों के मन-मस्तिष्क एवं उनके द्वारा अपनाए गए पढ़ाने के तरीकों में 'वर्ण पद्धति द्वारा प्रतीक चिन्ह पर कार्य करने की मान्यता' इतनी गूढ़ है कि वे इसके बाहर ही नहीं निकल पा रहे हैं। साथ ही वे चाहते हैं कि आप जिस पद्धति की बात कर रहे हैं उसे परिभाषित कर दें। अगर परिभाषित नहीं कर सकते तो यह कैसे पता कि जो हो रहा है वही समग्र-भाषा पद्धति है?

इन प्रश्नों की प्रतिक्रिया में समग्र-भाषा पद्धति पर काम कर रहे शिक्षक साथी कई बार यह तर्क देते हैं कि बच्चे सन्दर्भ से समग्र रूप में सीखते हैं और सन्दर्भ की समग्रता सीखने में मदद करती है। एक शिक्षक साथी ने तो यह भी कहा कि वह समग्र-भाषा अप्रोच अपनाते हुए काफी पहले से काम कर रहे हैं। यद्यपि वे नहीं जानते थे कि वे जो कर रहे हैं, वही समग्र-भाषा अप्रोच है। इस तरह की बातें सही हो सकती हैं, परन्तु शिक्षकों के बीच इसके तर्क के बारे में समझ का होना भी काफी ज़रूरी है; ताकि अन्य शिक्षक भी इस पर समझ बना सकें। मैंने कई बार देखा है कि इस तरह की चर्चाओं के बावजूद कई साथी कहते हैं कि आप जो कह रहे हैं वह बात तो सही है लेकिन यह बताइए, "यह समग्र-भाषा पद्धति है क्या और क्या यह तरीका सचमुच काम करता है?"

सिद्धान्तों की आवश्यकता

इन चर्चाओं से यह लगता है कि शिक्षकों के बड़े समूह के साथ काम करने

के लिए यह कह देना भर पर्याप्त नहीं है कि कुछ शिक्षक इस पर काफी पहले से काम कर रहे हैं, या यह कि समग्र-भाषा पद्धति भाषा को देखने का या भाषा के बारे में सोचने का एक तरीका है। इन अनुभवों से यह लगता है कि अगर हम समग्र-भाषा पद्धति के सिद्धान्तों और व्यवहार में इसके उपयोग के बारे में सरल एवं स्पष्ट रूप से बात नहीं कर पाएँगे, सामग्री नहीं बना पाएँगे तो शिक्षकों के बड़े समूह में इस पर समझ बनाने में कठिनाई होगी। इसलिए समग्र-भाषा पद्धति को न केवल उन साथियों को समझने की ज़रूरत है जो इस पर काम नहीं कर रहे हैं वरन् उन्हें भी है जो इस पर काम कर रहे हैं, ताकि अपनी समझ को विस्तार दे सकें। इसे समझने के लिए तीन बिन्दुओं को ध्यान में रखना होगा और इनसे सम्बन्धित सामग्री को समालोचनात्मक नज़रिए से देखना होगा,

1. शिक्षकों द्वारा इस पर विद्यालय में किया जा रहा कार्य।
2. भाषा शिक्षण को लेकर हुए शोध-कार्य से निकले शैक्षणिक सिद्धान्त।
3. साक्षरता और सीखने के सम्बन्ध को लेकर किए गए शोध जो समग्र-भाषा पद्धति को विश्वसनीय करार देते हों।

इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि ऐसा न हो कि सिद्धान्त रूप में शिक्षक समग्र-भाषा पद्धति को पढ़ना-लिखना सिखाने में भाषा की प्रणाली के रूप में मानें और व्यवहार में पढ़ना सीखने में ध्वनि-वर्ण पद्धति का उपयोग करें। अगर एक शिक्षक के रूप में हमें लगता है कि प्रारम्भिक शिक्षा में समग्र-भाषा पद्धति सभी विषयों की विषय-वस्तु को समाहित कर सकती है तो शिक्षक को गणित, विज्ञान, पर्यावरण-अध्ययन जैसे विषय पढ़ाते समय भी इन विषयों में सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने पर अपनी गहरी पारखी नज़र रखनी होगी।

समग्रता में हो इस्तेमाल

एक शिक्षक के रूप में यदि हमें लगता है कि समग्र-भाषा के पाठ्यक्रम के केन्द्र में बच्चा है तो शिक्षक साथियों को इस बात के लिए सक्षम होना होगा (खुद को स्थितियों के अनुरूप ढालने के लिए लोचदार रुख अपनाना होगा) कि बच्चों को कक्षा-कक्ष के अन्दर अकादमिक और सामाजिक निर्णयों में शामिल करें। सिर्फ यह कह भर देने से काम नहीं चलेगा कि मैं समग्र-भाषा के नज़रिए का प्रयोग कर रहा हूँ। शिक्षक साथियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि कक्षा-कक्ष में जो कुछ हो रहा है – कक्षा में पढ़ने-पढ़ाने की विधि, सामग्री, बच्चों की प्रतिभागिता, अर्थ पर ज़ोर आदि वह सब समग्र-भाषा के नज़रिए के अनुरूप हो।

कई बार विद्यालयों के अवलोकनों के दौरान यह देखा गया कि शिक्षकों द्वारा उपयोग की जा रही सामग्री समग्र-भाषा पद्धति के अनुरूप नहीं है। इस पद्धति पर काम करने वाले कुछ शिक्षकों की कक्षाओं में हमने दीवारों पर वर्णों के चार्ट, वर्णमाला और बारहखड़ी आदि अंकित भी देखे हैं। अतः यह समझ भी अत्यन्त आवश्यक है कि समग्र-भाषा पद्धति के लिए सभी सामग्री उपयुक्त नहीं है। इन शिक्षक साथियों द्वारा उपयोग में लाई जा रही सामग्री और समग्र-भाषा पद्धति के नज़रिए में मत-भिन्नता है।

अनौपचारिक समूह की बैठकों में यह भी देखा कि जब हम समग्र-भाषा पद्धति को छात्र केन्द्रित, बाल-साहित्य (कहानी, कविता आदि) के इर्द-गिर्द अर्थ को समाहित करते हुए समझाते हैं तो शिक्षक पाठ्यक्रम में उन सम्भावनाओं के बारे में जानने के लिए प्रेरित होते हैं।

परिभाषित करने की समस्याएँ

अनौपचारिक समूह में काम करते हुए एक समझ यह भी बनी कि समग्र-भाषा पद्धति को परिभाषित करना मुश्किल है। इसका एक मुख्य कारण तो यह है कि जो भी शिक्षक इस पद्धति के साथ काम कर रहे हैं उनके रास्ते एवं तरीके स्वयं के द्वारा खोजे गए हैं, जो एक-दूसरे से अलग एवं अनूठे हैं।

इसके साथ ही इस समूह के अधिकांश शिक्षकों का परिभाषाओं पर यकीन भी नहीं है इसलिए वे इसे करके देखकर अपने अनुभव को विस्तार दे रहे हैं। इनमें से कुछ साथियों का यह भी मानना है कि समग्र-भाषा पद्धति को समझने के लिए शिक्षक साथियों को उस 'असुविधा क्षेत्र' यानी स्वयं के कार्यों पर प्रश्न खड़े करना, भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में होने वाले शोधों को पढ़ना आदि में प्रवेश करना होगा जहाँ सामान्यतः कई शिक्षक साथी जाना ही नहीं चाहते हैं। साथ ही इसको समझने के लिए शिक्षकों को स्वयं के साथ काफी ईमानदार होकर अपने पिछले और वर्तमान कार्य का मूल्यांकन करना होगा। यह प्रक्रिया धैर्य, समय और गहन चिन्तन की माँग करती है।

अर्थपूर्ण सन्दर्भ में भाषा

समग्र-भाषा पद्धति सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का एक तरीका है। इसमें बच्चों को वाक्यों/शब्दों को सन्दर्भ के साथ सम्पूर्णता में पढ़ने और समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस नज़रिए को मानने वाले शिक्षक साथी यह मानते हैं कि भाषा को वर्ण और डिकोडिंग की प्रक्रिया में तोड़ कर नहीं देखना चाहिए। भाषा सन्दर्भ को समाहित करते हुए अर्थ-निर्माण और सार्थक संवाद की प्रक्रिया है। यह पद्धति बच्चों के भाषा के बारे में सम्पूर्ण पिछले ज्ञान और बढ़ती हुई समझ का उपयोग करती है। समग्र-भाषा

उप-समूह के साथी जो इस पद्धति की वकालत करते हैं वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि पढ़ना-लिखना सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बच्चों की भाषा और उनके अनुभवों को महत्व दिया जाए। इसलिए कुछ साथी इसे लिखित और मौखिक भाषा के लिए अर्थपूर्ण सन्दर्भ को समायोजित करते हुए तर्कपूर्ण संवाद करने की प्रक्रिया भी मानते हैं तथा इसे भाषा को, सीखने को, लोगों को, खास तौर से बच्चों और शिक्षकों के समूह को एक साथ लाने के तरीके के रुप में भी देखते हैं।

संक्षिप्त रूप से समग्र-भाषा पद्धति पाठ्यक्रम के बारे में विश्वासों का एक समूह है। यह सिर्फ भाषा के पाठ्यक्रम की बात नहीं करता वरन् कक्षा-कक्ष में सीखने-सिखाने के लिए होने वाले सभी कुछ को समाहित करता है...। समग्र भाषा पद्धति एक दार्शनिक स्वरूप है। यह दर्शन, भाषा विज्ञान, बाल विज्ञान, समाज शास्त्र, मानव शास्त्र, पाठ्यक्रम एवं साहित्यिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में हो रहे सैद्धान्तिक संवादों के व्यवहारिक अनुप्रयोगों का विवरण है। यह शिक्षा का एक नज़रिया है जो सीखने वाले और सीखना, शिक्षक और शिक्षण, भाषा और पाठ्यक्रम के बारे में विचारों से समर्पित है।

शिक्षकों के अनौपचारिक समूह में एक समझ यह बनने लगी है कि भाषा सम्पूर्णता एवं समग्रता लिए हुए ही होती है। परन्तु कई शिक्षक भाषा को छोटे-छोटे टुकड़ों (ध्वनि-वर्ण समूह) में देखने के आदी हो गए हैं। उन्हें लगता है कि बच्चे इन टुकड़ों को आसानी से सीख सकते हैं। इस उप-समूह के शिक्षकों में एक मान्यता यह भी है कि भाषा को टुकड़ों में सीखने वाले बच्चों द्वारा पढ़ना-लिखना सीखने की प्रक्रिया के दौरान बारीकी से निरीक्षण करने में ध्वनि-वर्ण पद्धति कारगर होती है।

इसके विपरीत कई शिक्षकों का मानना है कि समग्र-भाषा पद्धति से भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में भाषा की समग्रता को ध्यान में रखा जाना चाहिए और वाक्य-रचना, वाक्य-विन्यास तथा उसमें उपयोग किए गए शब्दों के अर्थ आदि को व्यावहारिक रूप में भाषा का उपयोग करते हुए सिखाया जाना चाहिए। इस उप-समूह में शिक्षक कोशिश करते हैं कि इस प्रक्रिया में सीखने वालों के सन्दर्भों एवं पिछली जानकारियों का ध्यान रखें और उसका परिस्थितियों के अुनरूप उपयोग करते हुए भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएँ।

बहुआयामी भूमिकाओं में शिक्षक

समग्र-भाषा पर काम कर रहे उप-समूह के शिक्षकों का मानना है कि प्रत्येक भाषा का विकास संस्कृति के विकास से जुड़ा हुआ है, इसलिए कक्षा-कक्ष

शिक्षा के दौरान भाषा सीखने-सिखाने एवं उस पर समझ बनाने की प्रक्रिया में वे बच्चों की संस्कृति को महत्व देते हैं। साथ ही बच्चे भाषा का कुशलतापूर्वक उपयोग करें, इसके लिए शिक्षक यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि बच्चे क्या करने की कोशिश कर रहे हैं और उन्हें वह करने में मदद करते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक बच्चों का ध्यान से अवलोकन करते हैं।

समग्र-भाषा पद्धति पर काम कर रहे शिक्षक एक ही समय पर अलग-अलग भूमिकाएँ निभा रहे होते हैं। वे कक्षा-कक्ष में शोधकर्ता, प्रतिभागी, सन्दर्भ व्यक्ति, शिक्षार्थी (सीखने वाला) और श्रोता की भूमिकाओं में होते हैं। साथ ही शिक्षक कक्षा-कक्ष के बाहर होने वाली घटनाओं और गतिविधियों को कक्षा-कक्ष के साथ जोड़ने की कोशिश भी करते हैं। इस प्रकार इन कक्षाओं में छात्र पाठ्यक्रम की योजना के केन्द्र में होता है एवं कक्षा-कक्ष में होने वाली प्रक्रिया उसकी रुचियों एवं आवश्यकताओं से प्रेरित होती है। इस पद्धति में काम कर रहे शिक्षक बच्चों के साथ सीखने-सिखाने की सामग्री का विकास भाषा एवं सीखने की प्रक्रिया के ज्ञान, बच्चों के बारे में जानकारी और अपने विषय और साहित्य की समझ के आधार पर करते हैं।

क्या नहीं है समग्र-भाषा पद्धति?

समग्र-भाषा की कई परिभाषाएँ अनुपयुक्त भी साबित हुई हैं जिससे कई तरह के भ्रम भी फैलते हैं जो इसकी वकालत करने वाले शिक्षकों को हतोत्साहित करते हैं। परन्तु इसका एक सकारात्मक पहलू यह भी है कि इस तरह के भ्रम समग्र-भाषा पद्धति पर काम करने वाले शिक्षकों को एक साझी स्वीकार्य परिभाषा बनाने के लिए प्रेरित भी करते हैं ताकि समग्र-भाषा से सम्बन्धित भ्रान्तियों को कम किया जा सके।

समग्र-भाषा पद्धति को एक हद तक इस तरह से भी परिभाषित किया जा सकता है कि समग्र-भाषा पद्धति क्या नहीं है। उदाहरण के लिए समग्र-भाषा पद्धति का अर्थ पढ़ना-लिखना सिखाने की शब्द पद्धति से नहीं है और न ही यह भाषाई अनुभव का दूसरा नाम है। कई बार यह भी कहा जाता है कि समग्र-भाषा की कक्षा का मतलब है कि बच्चे कक्षा में कुछ भी करें (जैसे गलत शब्द पढ़ें, गलत उच्चारण करें, व्याकरण की गलतियाँ करें, कक्षा में काफी अधिक बात करें, हुड़दंगी करें) वह सही है... परन्तु वास्तविकता में ऐसा नहीं है।

इन परिभाषाओं में कुछ हद तक समग्र-भाषा के गुण शामिल हैं परन्तु ऐसा नहीं है कि ये सभी बिलकुल सही हैं। उदाहरण के लिए समग्र-भाषा की कक्षा

में बच्चों द्वारा अपनी बात को कहने की कोशिश को महत्व दिया जाता है, सिखाने के तरीके और उद्देश्य अर्थपूर्ण होते हैं। इसलिए सामान्यतः बच्चों के अनुभव, कविताएँ एवं लेखों को समग्र-भाषा की कक्षा में भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में उपयोग में लाया जाता है। परन्तु यदि इसी कक्षा में ध्वन्यात्मक चिन्हों (वर्णों) को भाषा सीखने की कई प्रक्रियाओं के उपायों की ओर इशारे के रूप में ना सिखा कर एक यांत्रिक अभ्यास के रूप में सिखाया जाता है, तो सिखाने के तरीके और उद्देश्य अर्थपूर्ण नहीं रहते हैं। इस तरह की कक्षा समग्र-भाषा पद्धति के पढ़ना सिखाने के नज़रिए के साथ मेल नहीं खाती और इस आधार पर इसे समग्र-भाषा पद्धति की कक्षा नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त बातों में यह बात छुपी हुई है कि समग्र-भाषा पद्धति एक कार्यक्रम, सामग्रियों का पुलिन्दा, गतिविधियाँ, अभ्यास या तकनीक नहीं है वरन् यह भाषा और सीखने का एक नज़रिया है जो एक प्रकार की रणनीतियों, विधियों, सामग्रियों और तकनीकों (जैसे भाषा की कुछ पूर्वानुमानित किताबें, चर्चा समूह, शब्दों के नए उच्चारणों को स्वीकार करने का लोचपूर्ण रुख) आदि को निर्देशित करता है।

(शेष अगले अंक में)

सौरभ रॉयः अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, देहरादून में कार्यरत।

सृजन में भाषा बाधा नहीं बनती

एक सिरिंज पर वार्निश चढ़े ताँबे के तार के 500 घेरे लपेट कर तार के दोनों सिरों पर एल.ई.डी. लगाइए। सिरिंज का पिस्टन निकाल कर भीतर थोड़ी-सी रुई रखिए फिर नियोडायनियम का ताकतवर चुम्बक सिरिंज के भीतर रखकर, अँगूठे से सिरिंज का मुँह बन्द करके, सिरिंज को आगे-पीछे हिलाइए और देखिए क्या एल.ई.डी. जल रहा है?

संदर्भ मराठी एवं गुजराती भाषा में भी उपलब्ध है

सम्पर्क कीजिए

संदर्भ (मराठी)

शैक्षणिक संदर्भ - संदर्भ सोसायटी
c/o समुचित इन्वायरो टेक प्राइवेट लिमिटेड,
फ्लेट न. 06, एकता पार्क को-ऑप हाउसिंग
सोसायटी, निर्मिति शोरूम के पीछे,
अभिनव हाई स्कूल के पास, लॉ कॉलेज रोड,
पुणे 411004, फोन: 020 - 25460138
ई-मेल: sandarbh.marathi@gmail.com

संदर्भ (गुजराती)

नचिकेता ट्रस्ट
आर्च दवाखाना के पास, नगारिया,
धरमपुर, ज़िला वलसाड,
गुजरात 396050
फोन: 02633 - 240409

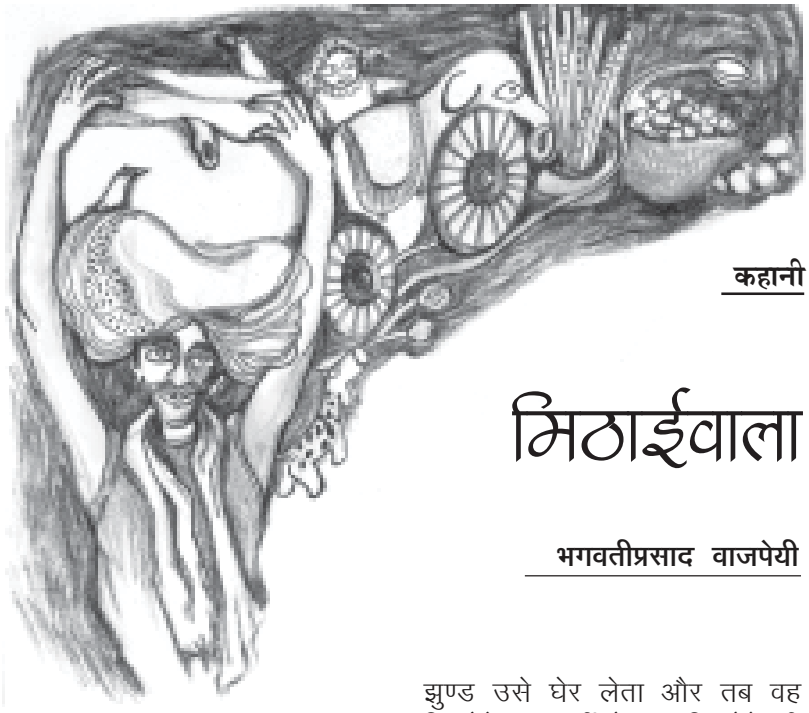

कहानी

मिठाईवाला

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता, "बच्चों को बहलानेवाला, खिलौनेवाला...।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र किन्तु मादक-मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कण्ठ से फूटा हुआ उपयुक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिए युवतियाँ चिकों को उठाकर छज्जों से नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता और तब वह खिलौनेवाला वहीं बैठकर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौने का मोल-भाव करने लगते। पूछते, "इछका दाम क्या है, औल इछका? औल इछका?" खिलौनेवाला बच्चों को देखता, और उनकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों से पैसे ले लेता, और बच्चों की इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने-कूदने लगते और तब फिर खिलौनेवाला उसी प्रकार गाकर कहता - बच्चों को बहलानेवाला, खिलौनेवाला...। सागर की हिलोर की भाँति उसका यह मादक गान गली भर के मकानों में इस ओर से उस ओर तक, लहराता हुआ पहुँचता, और

खिलौनेवाला आगे बढ़ जाता।

राय विजयबहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आए! वे दो बच्चे थे – चुन्नू और मुन्नू! चुन्नू जब खिलौने ले आया, तो बोला, "मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ।"

मुन्नू बोला, "औल देखो, मेला कैछा छुन्दल ऐ।"

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अन्त में दोनों बच्चों को बुलाकर उसने पूछा, "अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिए हैं?"

मुन्नू बोला, "दो पैछे में! खिलौनेवाला दे गया ऐ।"

रोहिणी सोचने लगी, इतने सस्ते कैसे दे गया है। कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है!

एक ज़रा-सी बात ठहरी। रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार की आवश्यकता भी भला क्यों पड़ती।

2

छह महीने बाद।

नगर भर में दो-चार दिनों से एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे, "भाई वाह! मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर, गाना सुनाकर वह मुरली बेचता भी है सो भी दो-दो पैसे। भला, इसमें उसे क्या मिलता होगा? मेहनत भी तो न आती होगी!"

एक व्यक्ति ने पूछ लिया, "कैसा है वह मुरलीवाला, मैंने तो उसे नहीं देखा!"

उत्तर मिला, "उम्र तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस

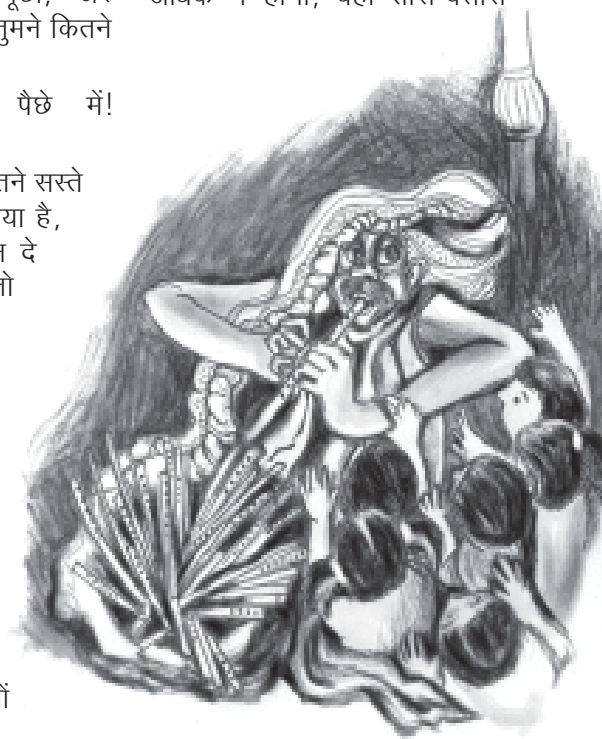

का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बाँधता है।"

"वही तो नहीं, जो पहले खिलौने बेचा करता था?"

"क्या वह पहले खिलौने भी बेचा करता था?"

"हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक उस्ताद।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती। प्रतिदिन नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक, मृदुल स्वर सुनाई पड़ता, "बच्चों को बहलानेवाला, मुरलीवाला।"

रोहिणी ने भी मुरलीवाले का यह स्वर सुना। तुरन्त ही उसे खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन-ही-मन कहा, "खिलौनेवाला भी इसी तरह गा-गाकर खिलौने बेचा करता था।"

रोहिणी उठकर अपने पति विजय बाबू के पास गई, "ज़रा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिए ले लूँ। क्या पता यह फिर इधर आए, न आए। वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गए हैं।"

विजय बाबू एक समाचार पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाज़े पर आकर मुरलीवाले से बोले, "क्यों भई, किस तरह देते हो मुरली?"

किसी की टोपी गली में गिर पड़ी। किसी का जूता पार्क में ही छूट गया, और किसी की सोथनी (पाजामा) ही ढीली होकर लटक आई है। इस तरह दौड़ते-हाँफते हुए बच्चों का झुण्ड आ पहुँचा। एक स्वर से सब बोल उठे, "अम बी लेन्दे मुल्ली, और अम बी लेन्दे मुल्ली।"

मुरलीवाला हर्ष से गद्‌गद् हो उठा। बोला, "देंगे भैया! लेकिन ज़रा रुको, ठहरो, एक-एक को देने दो। अभी इतनी जल्दी हम कहीं लौट थोड़े ही जाएँगे। बेचने तो आए ही हैं, और हैं भी इस समय मेरे पास एक-दो नहीं, पूरी सत्तावन।... हाँ, बाबूजी, क्या पूछा था आपने कि कितने में दीं!... दी तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से है, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूँगा।"

विजय बाबू भीतर-बाहर, दोनों रूपों में मुस्कुरा दिए। मन ही मन कहने लगे – कैसा है। देता तो सबको इसी भाव से है, पर मुझ पर उलटा एहसान लाद रहा है। फिर बोले, "तुम लोगों की झूठ बोलने की आदत होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझा मेरे ही ऊपर लाद रहे हो।"

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला, "आपको क्या पता बाबूजी कि इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दुकानदार चाहे हानि उठाकर चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं – दुकानदार मुझे लूट रहा है। आप भला काहे को विश्वास करेंगे? लेकिन सच पूछिए तो बाबूजी, असली दाम

दो ही पैसा है। आप कहीं से दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते। मैंने तो पूरी एक हज़ार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पड़ी हैं।"

विजय बाबू बोले, "अच्छा, मुझे ज़्यादा वक्त नहीं, जल्दी-से दो ठो निकाल दो।"

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गए। मुरलीवाला देर तक उन बच्चों के झुण्ड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रंग पसन्द करते, मुरलीवाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है। तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू तुम्हारे लायक तो बस यह है। हाँ भैए, तुमको वही देंगे। ये लो।... तुमको वैसी न चाहिए, यह नारंगी रंग की, अच्छा वही लो।.... ले आए पैसे? अच्छा, ये लो तुम्हारे लिए मैंने पहले ही निकाल रखी थी...! तुमको पैसे नहीं मिले? तुमने अम्मा से ठीक तरह माँगे न होंगे। धोती पकड़कर पैरों में लिपटकर, अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं बाबू! हाँ, फिर जाओ। अबकी बार मिल जाएँगे...। दुअन्नी है? तो क्या हुआ, ये लो पैसे वापस लो। ठीक हो गया न हिसाब? ...मिल गए पैसे? देखो, मैंने तरकीब बताई! अच्छा अब तो किसी को नहीं लेना है? सब ले चुके? तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं हैं? अच्छा, तुम भी यह लो। अच्छा, तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ़ गया।

3

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सारी बातें सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करने वाला फेरीवाला पहले कभी नहीं आया। फिर यह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है! भला आदमी जान पड़ता है। समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो न कराए, सो थोड़ा!

इसी समय मुरलीवाले का क्षीण स्वर दूसरी निकट की गली से सुनाई पड़ा, "बच्चों को बहलानेवाला, मुरलीवाला!"

रोहिणी इसे सुनकर मन ही मन कहने लगी – और स्वर कैसा मीठा है इसका!

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरलीवाले का वह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति वे स्नेहसिक्त बातें याद आती रहीं। महीने-के-महीने आए और चले गए। फिर मुरलीवाला न आया। धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण हो गई।

4

आठ मास बाद –

सर्दी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके मकान की छत पर चढ़कर आजानुलम्बित* केश-राशि सुखा रही

* *घुटनों तक लम्बे बाल।*

थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा, "बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला।"

मिठाईवाले का स्वर उसके लिए परिचित था, झट-से रोहिणी नीचे उतर आई। उस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हाँ, उनकी वृद्धा दादी थीं। रोहिणी उनके निकट आकर बोली,

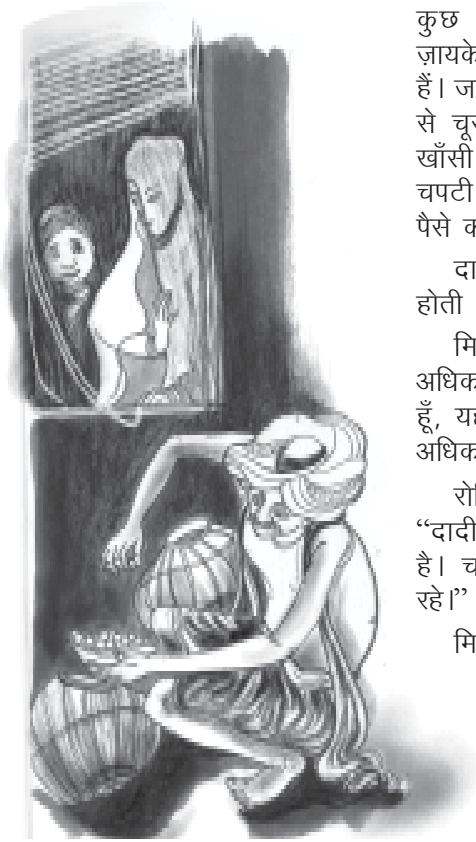

"दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिए मिठाई लेनी है। ज़रा कमरे में चलकर ठहराओ। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। ज़रा हटकर मैं भी चिक की ओट में बैठी रहूँगी।"

दादी उठकर कमरे में आकर बोलीं, "ए मिठाईवाले, इधर आना।"

मिठाईवाला निकट आ गया। बोला, "कितनी मिठाई दूँ, माँ? ये नए तरह की मिठाइयाँ हैं – रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी, ज़ायकेदार, बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवा ये खाँसी भी दूर करती हैं! कितनी दूँ? चपटी, गोल, पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोलीं, "सोलह तो बहुत कम होती हैं, भला पच्चीस तो देते।"

मिठाईवाला बोला, "नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतना भी देता हूँ, यह अब मैं तुम्हें क्या... खैर, मैं अधिक न दे सकूँगा।"

रोहिणी दादी के पास ही थी। बोली, "दादी, फिर भी काफी सस्ता दे रहा है। चार पैसे की ले लो। यह पैसे रहे।"

मिठाईवाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो चार की दे दो। अच्छा, पच्चीस नहीं सही, बीस ही दो। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई, मोल-भाव अब मुझे ज़्यादा करना आता भी

नहीं।" कहते हुए दादी के पोपले मुँह से ज़रा-सी मुस्कुराहट फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा, "दादी, इससे पूछो, तुम इस शहर में और भी कभी आए थे या पहली बार आए हो। यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं।"

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाईवाले ने उत्तर दिया, "पहली बार नहीं, और भी कई बार आ चुका हूँ।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली, "पहले यही मिठाई बेचते हुए आए थे, या और कोई चीज़ लेकर?"

मिठाईवाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों में डूबकर बोला, "इससे पहले मुरली लेकर आया था, और उससे भी पहले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बातें पूछने के लिए अस्थिर हो उठी। वह बोली, "इन व्यवसायों में भला तुम्हें क्या मिलता होगा?"

वह बोला, "मिलता भला क्या है! यही खाने भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ, सन्तोष, धीरज और कभी-कभी असीम सुख ज़रूर मिलता है और यही मैं चाहता भी हूँ।"

"सो कैसे? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ उन बातों की क्यों चर्चा करूँ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आप को दुःख ही होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्ज़ा न होगा। मिठाई मैं और भी कुछ ले लूँगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा, "मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान-व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री सुन्दरी थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति! विधाता की लीला। अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अन्त में होंगे तो यहीं कहीं। आखिर, कहीं जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख-सन्तोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है, आपकी दया से पैसे तो काफी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

रोहिणी ने अब मिठाईवाले की ओर देखा – उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गए। रोहिणी से लिपटकर, उसका आँचल पकड़कर बोले, "अम्माँ, मिठाई!"

"मुझसे लो।" कहकर, तत्काल कागज़ की दो पुड़ियाँ, मिठाइयों से भरी, मिठाईवाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दीं!

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिए।

मिठाईवाले ने पेटी उठाई, और कहा, "अब इस बार ये पैसे न लूँगा।"

दादी बोली, "अरे-अरे, न न, अपने पैसे लिए जा भाई!"

तब तक आगे फिर सुनाई पड़ा उसी प्रकार मादक-मृदुल स्वर में, "बच्चों को बहलानेवाला मिठाईवाला।"

भगवतीप्रसाद वाजपेयी: कई उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जो कथ्य की दृष्टि से बेजोड़ हैं। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से ये कहानियाँ आधुनिक कहानी का प्रतिनिधित्व करती हैं। वाजपेयी आधुनिक कहानीकारों के ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनकी कहानियाँ जीवन मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करती हैं।

सभी चित्र: तनुश्री: आई.डी.सी., आई.आई.टी. बॉम्बे से एनीमेशन में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से एनीमेशन फिल्में बनाती हैं और चित्रकारी करती हैं।

आपकी लेखनी बढ़ाती है हमारा हौसला!!

प्रिय पाठको,

हमें उम्मीद है कि आपको 'संदर्भ' समय पर मिल रही होगी और आप इसे ज़रूर उलटते-पलटते होंगे। हमारा यह पत्र खास तौर पर उन शिक्षकों के लिए है जिन तक हम पहुँच पा रहे हैं और उनके लिए भी जिन तक आप पहुँच रहे हैं।

हमारे पुराने पाठक इस बात से शायद वाकिफ होंगे कि 'संदर्भ' पत्रिका की शुरुआत 1994 में हुई और तब से यह लगातार प्रकाशित हो रही है। यह वो दौर था जब होशंगाबाद साइंस टीचिंग प्रोग्राम (होविशिका) चल रहा था। होविशिका के दौरान एकलव्य मध्य प्रदेश के 15 ज़िलों के लगभग 1000 स्कूलों में काम कर रहा था। उस दौर में तकरीबन 2000 साथी शिक्षकों का साथ मिला है हमें। उन्हीं दिनों 'शैक्षणिक संदर्भ' की अवधारणा को मूर्त रूप दिया गया जो होविशिका एवं एकलव्य के अन्य शैक्षणिक कार्यक्रमों से निकलने वाली जिज्ञासाओं और सवालों पर विमर्श व जानकारी का एक मंच बना। 'संदर्भ' के लेखों ने हमेशा ही स्कूली पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने का काम किया है। हमने सदैव सीखने-सिखाने को सबकी मिली-जुली प्रक्रिया माना है और इस नाते हमें अपने हर पाठक से इस काम में हिस्सेदारी की ज़रूरत एवं अपेक्षा है।

शुरुआत से ही 'संदर्भ' पत्रिका के पाठकों में शिक्षकों का एक बड़ा वर्ग रहा है। शिक्षकों ने लेख लिखकर इसके सामग्री निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हम चाहते हैं कि यह सिलसिला आगे भी यूँ ही चलता रहे।

हम चाहते हैं कि आप लिखें क्योंकि:

- शिक्षक खुद के काम एवं बच्चों के ज़रिए समाज के ज़्यादातर पहलुओं से सीधे रूबरू होते हैं।
- शिक्षण कार्य के दौरान शिक्षक रोज़ ही पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या की अपने सन्दर्भों में व्याख्या करते हैं, उन्हें ट्रांज़ैक्ट करने के नए-नए तरीके ढूँढ़ते व उन्हें इस्तेमाल करते हैं। हम चाहते हैं कि वे तरीके व अनुभव औरों तक भी पहुँचें।
- कक्षा के दौरान कई ऐसे वाकये अक्सर ही होते रहते हैं जिन्हें आप दूसरों के साथ साझा करना चाहेंगे - कुछ नया, कुछ मज़ेदार, कभी सवाल, कभी दुविधाएँ...।
- पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 और शिक्षा का अधिकार कानून के बाद शिक्षण व्यवस्था एवं प्रक्रिया में कई बदलाव आए हैं। इन बदलावों के तात्कालिक और दूरगामी परिणाम होंगे

और उनके बारे में आप शायद बेहतर जानते हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि आप इनसे सम्बन्धित अपने अनुभवों को सबसे साझा करें।

विभिन्न कार्यक्रमों के दौरान जब भी हमारा शिक्षकों, छात्रों, शोधकर्ताओं आदि से मिलना होता है, तो हमसे यह सवाल अक्सर पूछा जाता है कि 'संदर्भ' के लिए हम **क्या लिखें?** और **कैसे लिखें?**

क्या लिखें?

आइए शुरुआत हम पहले सवाल से ही करते हैं कि आखिर क्या लिखा जाए।

जैसा कि आप जानते हैं, 'संदर्भ' में विज्ञान की विविध शाखाओं भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान से लेकर गणित, भाषा, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, शिक्षणशास्त्र से लेकर लायब्रेरी संचालन, और आपके विविध शैक्षिक अनुभवों आदि अनेकों विषयों पर लेख छपते हैं। हमारे लेखकों में भी बहुत विविधता है। शिक्षक, भाषाविद्, कॉलेज के प्रोफेसर, विषयों के विशेषज्ञ और इनके साथ ही पालक, विद्यार्थी और सामान्य पाठक इत्यादि। अतः आप अपनी रुचि और अनुभव के क्षेत्र को ध्यान में रख लेख लिखकर हमसे साझा कर सकते हैं। हाँ, इतना ज़रूर ध्यान रखना है कि हमारी पत्रिका का पाठक-वर्ग प्रमुखतः मिडल और हाई स्कूल के विद्यार्थी और शिक्षक हैं।

कैसे लिखें?

एक बार यह तय कर लिया कि किस विषय पर लिखना है तो अब अगला सवाल आ टपकता है कि आखिर लिखें कैसे। यह सवाल अक्सर हमारे पास विषय और रुचि रहने के बावजूद हमें लेख लिखने से रोक देता है। पर हम चाहते हैं कि आप यहाँ न रुकें और बेझिझक अपना लेख हमें लिख भेजें।

हमारे एक वरिष्ठ अनुभवी सम्पादक का मानना है कि हमारा लेख लिखना वास्तव में लेख के अन्दर छुपे कुछ सवालों के जवाब देना है। हर लेख, चाहे वो किसी भी विषय पर लिखा जाए, किसी भी शैली में लिखा जाए अपने अन्दर कुछ सहज-से सवाल जैसे क्या, क्यों, कैसे आदि लेकर चलता है और हम इनका जवाब देते हुए लेख को आगे बढ़ा रहे होते हैं।

हमें ध्यान रखना है कि लेख की शुरुआत से लेकर आखिरी तक की लाइन के बीच आपस में एक जुड़ाव बना रहे। अपने विषय से ज़्यादा न भटकें बल्कि उसके इर्द-गिर्द ही बने रहने का प्रयास करें। कोशिश करें कि शुरू में दो विषयों को न मिलाएँ, चाहें तो दो विषयों पर दो अलग लेख बना लें।

तो हमें आपके लेख का इन्तज़ार रहेगा!

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

मासिक पत्रिका

स्रोत के ग्राहक बनें

एक प्रति **15** *रुपए*

व्यक्तिगत वार्षिक सदस्यता **150** *रुपए*

संस्थागत वार्षिक सदस्यता **300** *रुपए*

ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का एक सशक्त संसाधन है 'स्रोत' पत्रिका

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से इस पते पर भेजें

ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

फोन : (0755) 2550976, 2671017

ई-मेल : srotefeatures@gmail.com

Order your copies at: pitara@eklavya.in

सवालीराम

सवाल: उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव में ही बर्फ का जमावड़ा क्यों होता है?

जवाब: वैसे बर्फ का जमावड़ा उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव में सबसे ज़्यादा तो है लेकिन वर्तमान में उष्णकटिबन्धीय हिमालय पर्वत माला और भूमध्य रेखा पर स्थित तंज़ानिया की किलिमंजारो पर्वत पर भी बर्फ का जमावड़ा दिखता है। यानी कि अधिकतर उच्च अक्षांश और पहाड़-पठार की ऊँचाइयों पर ही बर्फ का जमावड़ा दिखता है। यह इसलिए कि ऐसी जगहों पर अन्य जगहों की तुलना में ठण्ड ज़्यादा होती है और सालभर का औसत तापमान इतना कम होता है कि जो बर्फ गिरती है वह पूरी तरह से पिघल नहीं पाती।

लेकिन पूरे पृथ्वी के औसत तापमान का भी असर होता है बर्फ के क्षेत्रफल पर। बहुत पहले, जब औसत तापमान आज से कम था, पृथ्वी पर बर्फ का जमावड़ा इससे अधिक व अन्य जगहों पर भी रहा है। पृथ्वी के तापमान के बढ़ते ज़्यादातर जगहों से बर्फ पिघल चुकी है। चूँकि कम अक्षांशों की तुलना में ध्रुवों और पहाड़ की ऊँचाइयों पर ज़्यादा ठण्ड रहती है, यहाँ पर बर्फ का जमावड़ा अब भी दिखता है।

ध्रुवों पर ज़्यादा ठण्ड क्यों?

पृथ्वी पर भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ जाते हैं तो औसत तापमान घटता जाता है। इसके दो कारण हैं। ऊँचे अक्षांशों पर पृथ्वी की वक्रता के कारण सूरज से उतनी ही रोशनी ज़्यादा क्षेत्रफल पर पड़ती है (चित्र-1)। यह भी कह सकते हैं कि उतने ही क्षेत्रफल में सूरज की ऊर्जा कम मात्रा में पहुँचती है जिस कारण तापमान भी कम ही रहता है।

इतना ही नहीं, साल में कुछ महीनों के लिए ध्रुवों पर सूरज उगता ही नहीं है - चौबीसों घण्टे अँधेरा रहता है। पृथ्वी का एक गोलार्ध जब सूरज से विपरीत झुका होता है, तो कुछ समय के लिए उस गोलार्ध के ध्रुव पर सूरज की किरणें बिलकुल नहीं पड़ती हैं (चित्र-2)। यह पृथ्वी के अक्ष के झुकाव के कारण होता है और ऐसे में उस ध्रुव

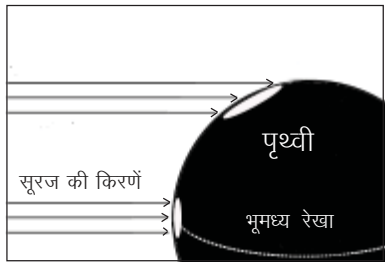

चित्र-1

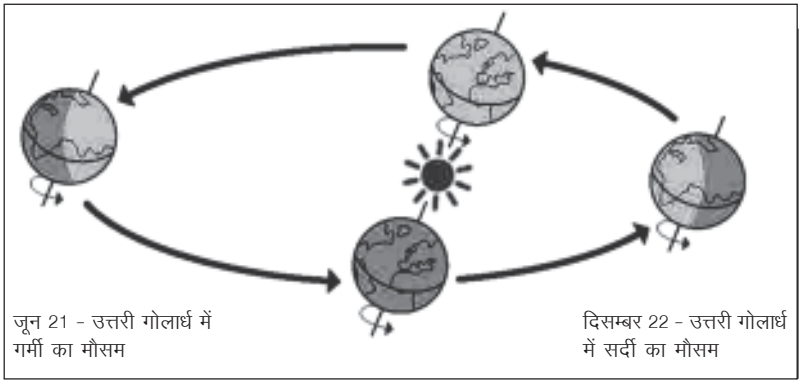

चित्र-2: जून में उत्तरी ध्रुव पर लगातार दिन और दिसम्बर में लगातार रात।

पर सर्दी होती है। इन महीनों में बर्फ गिरती-जमती जाती है। जब यही ध्रुव साल के कुछ महीनों के लिए सूरज की तरफ झुका रहता है तब यहाँ लम्बे समय के लिए सूर्यास्त नहीं होता। ऐसे में वहाँ गर्मी का मौसम होता है और बर्फ पिघलती है।

जब पृथ्वी का औसत तापमान इतना गिरता है कि सर्दियों में काफी ज़्यादा बर्फबारी होती है जो गर्मियों में पूरी तरह पिघलती नहीं है, तो अगली सर्दी में इस न पिघले बर्फ के कारण वहाँ का तापमान पहले से कम हो जाता है। यह इसलिए कि सफेद रंग के कारण सूरज की किरणें काफी हद तक बर्फ से परावर्तित हो जाती हैं। इसे ऐल्बीडो इफेक्ट कहते हैं (समुद्र का पानी सिर्फ 6 प्रतिशत रोशनी परावर्तित करता है और बर्फ 50 से 70 प्रतिशत)। तो इस इफेक्ट के कारण अगली सर्दी में गिरने वाली बर्फ इस बर्फ के ऊपर जमती जाती है। ऐसे साल-दर-साल बर्फ का जमावड़ा बढ़ता है और इसके बढ़ते क्षेत्रफल के साथ, ऐल्बीडो इफेक्ट की वजह से परावर्तन ज़्यादा होता है, और इस तरह बर्फ का जमावड़ा बढ़ता जाता है। यह एक पोज़िटिव फीडबैक चक्र का बहुत ही स्पष्ट उदाहरण है।

ऊँचाइयों पर ज़्यादा ठण्ड क्यों?

सतह से जितना ऊँचा जाते हैं, हवा का दबाव कम होता जाता है, हवा कम घनी होती जाती है। और जितनी विरल हवा, उसमें उतना कम पदार्थ। गर्मी की मात्रा, पदार्थ की मात्रा से जुड़ी है। ऊँचाइयों पर हवा की इकाई में कम पदार्थ और कम गर्मी होती है। जब कम गर्मी के कारण बर्फ गिरती-जमती है तो उसका जमावड़ा होने लगता है, कुछ ऐसे ही जैसे ध्रुवों पर होता है। इसी कारण हिमालय और किलिमंजारो पर, जो बहुत ही ऊँची पर्वत ृंखलाएँ हैं, बर्फ

का जमावड़ा पाया जाता है।

तो हमने देखा कि बर्फ तो किसी भी अक्षांश पर जम सकती है। और पृथ्वी पर बर्फ का जमावड़ा सालभर या कई सालों के अर्से में कहाँ-कहाँ पाएँगे, इसका हमें पता चलता है स्नो-लाइन की अवधारणा से।

जलवायु स्नो-लाइन

स्नो-लाइन वह काल्पनिक रेखा है जिससे हम टिकाऊ बर्फ (permanent snow cover) की सीमा को जान सकते हैं। स्नो-लाइन मानचित्रों पर उन जगहों को जोड़ते हुए एक लकीर के रूप में बनाई जाती है जहाँ सालभर में जितनी बर्फ गिरती है, उतनी ही पिघलती या वाष्पित होती है। तो धरती हो या समुद्र, बर्फ के जमावड़े का आखिरी छोर है स्नो-लाइन। ऐसा भी कह सकते हैं कि किसी जगह पर यह रेखा वो ऊँचाई है जिससे अधिक ऊँचाई पर सालभर थोड़ा-बहुत बर्फ ज़मीन पर रहता ही है।

स्नो-लाइन हर अक्षांश पर बन सकती है। भूमध्य रेखा पर स्नो-लाइन काफी ऊँचाई पर होगी और ध्रुवों पर कम ऊँचाइयों पर।

लेकिन किसी एक जगह पर स्नो-लाइन ऊँचाई ही नहीं, कई अन्य कारकों से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, ध्रुवों पर - जहाँ तापमान आम तौर पर कम रहता है - स्नो-लाइन कम ऊँचाइयों पर पाई जाती है और भूमध्य रेखा पर ज़्यादा ऊँचाई पर (तालिका-1)। पहाड़ियों पर जहाँ दोपहर में सूरज की किरणें पड़ती हैं और जहाँ पानी कम गिरता है, वहाँ स्नो-लाईन अधिक ऊँचाइयों पर होती है।

व्यापक स्तर और हज़ारों-लाखों

पर्वत का नाम	अक्षांश	स्नो-लाइन की ऊँचाई (लगभग)
माउन्ट कैन्या	0°	4600-4700 m
हिमालय	28°N	6000 m
हिमालय (काराकोरम)	36°N	5400-5800 m
ऐल्प्स	46°N	2700-2800 m
आइसलैण्ड	65°N	700-1100 m
स्वाल्बार्ड	78°N	300-600 m

तालिका-1: विभिन्न अक्षांशों पर स्नो-लाइन की ऊँचाई। आम तौर पर अक्षांश बढ़ने के साथ-साथ स्नो-लाइन कम ऊँचाई पर पाई जाती है। परन्तु कहीं-कहीं कम अक्षांश (जैसे माउन्ट कैन्या) पर स्नो-लाइन अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर मिल जाती है क्योंकि वहाँ पर बारिश ज़्यादा होती है यानी मौसम अधिक गीला रहता है।

आइस-कोर से पृथ्वी की जलवायु का इतिहास

अन्टार्कटिका, ग्रीनलैण्ड व तिब्बत जैसी ऊँची, बर्फीली जगहों पर हज़ारों-लाखों साल से हिमनदियाँ यानी ग्लेशियर मौजूद रहे हैं और बर्फ का जमावड़ा बना हुआ है। हर साल यहाँ बर्फ गिरती व जमती है। जब यह बर्फ जमती है तो उसके साथ हवा के कई घटक जैसे धूल, विभिन्न गैस, प्रदूषण इत्यादि भी लगातार और नियमित रूप से इसमें दर्ज होते जाते हैं। बर्फ के सबसे नीचे वाले हिस्से में सबसे पुराने पदार्थ मौजूद हैं। सतह से कुछ गहराइयों पर जिस बर्फ में लाखों-अरबों सालों से तोड़-फोड़ नहीं हुई है, उससे हम अतीत के पर्यावरण के बारे में काफी कुछ जान सकते हैं। आइस-कोर बर्फ की एक बेलनाकार लम्बाई है जिसके रासायनिक परीक्षण से हम ऐसा कर पाते हैं। वैज्ञानिक बहुत ही सावधानी के साथ आइस-कोर के एक बेलनाकार टुकड़े को लेकर उसे हिस्सों में बाँट लेते हैं। हर हिस्से की उम्र और उसमें फँसे धूल-गैस की जाँच करते हैं। इस तरीके से पृथ्वी के इतिहास के तापमान, बारिश, जंगल के स्वरूप, समुद्र की जैव-विविधता इत्यादि का अनुमान लगाया जाता है। आइस-कोर के अध्ययन के ज़रिए हम पृथ्वी की आज से आठ लाख साल पहले की जलवायु के बारे में भी जान सके हैं। उथले आइस-कोर (100-300 मीटर) से हमें पिछले कुछ सैकड़ों सालों की जलवायु का पता चलता है। सबसे लम्बे आइस-कोर 3 कि.मी. की गहराई से लिए गए हैं। ऐसे आइस-कोर को ड्रिल करने के लिए एक साल से भी अधिक समय लगता है। आइस-कोर की रासायनिक जाँच भी काफी जटिल होती है क्योंकि आम तौर पर उसमें मौजूद पदार्थ काफी कम मात्रा में पाए जाते हैं।

चित्र-3: पृथ्वी पर अलग-अलग समय पर बर्फ का क्षेत्रफल - एक अनुमान।

सालों के समय-अन्तराल पर यह लाइन तापमान में बदलाव के साथ जुड़े पृथ्वी के घटते-बढ़ते बर्फ के आवरणों के बारे में हमें बताती है (जैसे चित्र-3 में दिया गया है)।

हिमयुग और बर्फ के आवरण का बढ़ना-घटना

पृथ्वी का औसत तापमान हमारे जीवनकाल में बहुत ही कम बदला है, हालाँकि कुछ ही डिग्री तापमान के बदलाव से जलवायु काफी प्रभावित हो सकती है। परन्तु हज़ारों-लाखों साल के समय-अन्तराल में पृथ्वी का औसत तापमान इतना बदलता रहा है कि बर्फ का जमावड़ा आज से कहीं अधिक या कम भी होता रहा है।

पृथ्वी के इतिहास पर हुए शोध से हमें यह पता है कि हमारा यह ग्रह पाँच हिमयुगों से गुज़र चुका है। आज भी हम एक हिमयुग से ही गुज़र रहे हैं जो कुछ 25 लाख साल पहले शुरू हुआ था। किसी भी हिमयुग में अधिक व कम ठण्डक के काल बारी-बारी से आते-जाते हैं। ये हिमाच्छादन व अन्तर-हिमानी काल (glaciations and inter-glacial periods) कहलाते हैं। इस हिमयुग में भी शुरू के 15 लाख साल में हर 41,000 साल मौसम काफी हद तक बदलता था। हिमानी काल में बर्फ की परतें बढ़ती-फैलती थीं फिर 41,000 साल बाद पिघलती-घटती थीं। लेकिन पिछले 10 लाख सालों से मौसम इसी चक्रीय तरीके से ज़्यादा अवधि पश्चात् - हर एक लाख साल में बदलता रहा है। यानी कि हर लाख साल बर्फ की परतें बढ़ती हैं, फिर घटती हैं। ऐसा है कि हर 41,000 साल पृथ्वी के अक्ष का झुकाव 21.5 डिग्री से 24.5 डिग्री हो जाता है और अगले 41,000 सालों में वापिस 21.5 डिग्री पर आ जाता है। हर 1,00,000 साल पृथ्वी का सूरज के चक्कर काटने वाला कक्ष 5% कम या ज़्यादा अण्डाकार हो जाता है। तो ऐसा लगता है कि तापमान में ये परिवर्तन खगोलीय चक्रों पर निर्भर हैं।

पिछले कुछ 12,000 सालों से हम एक अन्तर-हिमानी काल से गुज़र रहे हैं। यह एक प्रमुख कारण है पृथ्वी के

तापमान के बढ़ने और ध्रुवों पर बर्फ के पिघलने-घटने का। शोध से हमें यह भी पता है कि मनुष्यों द्वारा प्रदूषण के कारण हो रहे ग्लोबल वॉर्मिंग का भी ध्रुवों की बर्फ पिघलने में योगदान है।

वैज्ञानिकों के अनुमान के मुताबिक मनुष्यों के जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव के बावजूद यह अन्तर-हिमानी काल खत्म होगा और पृथ्वी अगले हिमयुग में ज़रूर जाएगी। तो वर्तमान में बर्फ का जमावड़ा भविष्य में बदलेगा ज़रूर।

इस जवाब को विनता विश्वनाथन ने तैयार किया है।
विनता विश्वनाथन: 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

इस बार का सवाल

सवाल: दर्द निवारक दवाएँ कैसे काम करती हैं?

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना हमारे पास लिखकर भेज दीजिए।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव में ही बर्फ का जमावड़ा क्यों होता है? इससे सम्बन्धित लेख पढ़िए पृष्ठ 87 पर।

RNI No. : MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल-462 016 द्वारा
एकलव्य से प्रकाशित तथा भण्डारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादकः राजेश खिंदरी।